37



कथाकुञ्ज

भाग १



हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा



प्रकाशक—
प्रियबन्धु
व्यवस्थापक प्रकाशन विभाग
हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा



प्रथम संस्करण
३०००
२५-२-१९५२
मूल्य १-८-० भा. मु.
१-१२-० हा. मु.



मुद्रक—
व्यवस्थापक हिन्दी प्रेस,
हिन्दी प्रचार सभा,
श्रीराम हिन्दी भवन,
नामपल्ली स्टेशन रोड, हैदराबाद द.

भूमिका



संस्कृति के विकास के प्रथम क्षण से ही मानव ने अपनी अनुभूतियों को कहानी के रूप में कहने और सुनने का माध्यम अपनाया।

इस माध्यम ने मानव को मनोरञ्जन ही नहीं ज्ञान भी प्रदान किया है। आज भी इस माध्यम ने अपना महत्व नहीं खोया है। सभ्यता के विकास के साथ इसका विकास हुआ है और संस्कृति के पोषण के साथ इसका भी पोषण हुआ है।

कहानी, शैली और भावना में इतनी विविधता रखती है कि उसकी परिभाषा करना सरल कार्य नहीं है। उसमें रहस्य है, भय है, स्नेह है, वात्सल्य है, आश्चर्य है और वह सब कुछ है जो हमारे जीवन में है और जो जीवन के लिए आवश्यक है और उसमें वह भी है जो जीवन के लिए आवश्यक नहीं है और जीवन में कभी नहीं रहा।

कहानी की इन विविध शैलियों को एक स्थान पर एकत्रित करना सरल नहीं है।

इस संकलन में इसी का प्रकार कुछ प्रयत्न किया गया है।

अनुक्रमणिका

ममता

१

रोहतास-दुर्ग के प्रकोष्ठ में बैठी हुई युवती ममता, शोण के तीक्ष्ण गंभीर प्रवाह को देख रही है। ममता विधवा थी। उसका यौवन शोण के समान ही उमड़ रहा था। मन में वेदना; मस्तक में आँधी, आँखों में पानी की बरसात लिये, वह सुख के कंटक-शयन में विकल थी। वह रोहतास-दुर्गपति के मंत्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता थी, फिर उसके लिए कुछ अभाव होना असंभव था, परन्तु वह विधवा थी,—हिन्दू-विधवा संसार में सबसे तुच्छ निराश्रय प्राणी है—तब उसकी विडम्बना का कहाँ अंत था?

चूड़ामणि ने चुपचाप उसके प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। शोण के प्रवाह में, उसके कल-नाद में अपना जीवन मिलाने में वह बेसुध थी। पिता का आना न जान सकी। चूड़ामणि व्यथित हो उठे। स्नेह-पालिता पुत्री के लिये क्या करें, यह स्थिर न कर सकते थे। लौट कर बाहर चले गये। ऐसा प्रायः होता, पर आज मंत्री के मन में बड़ी दुश्चिन्ता थी। पैर सीधे न पड़ते थे।

एक पहर बीत जाने पर वे फिर ममता के पास आये। उस समय उनके पीछे दस सेवक चाँदी के बड़े थालों में कुछ लिये हुए खड़े थे; कितने ही मनुष्यों के पद शब्द सुन ममता ने घूम कर देखा। मंत्री ने सब थालों को रखने का संकेत किया। अनुचर थाल रख कर चले गये।

ममता ने पूछा—"यह क्या है पिताजी?"

"तेरे लिये बेटी! उपहार है।"—कह कर चूड़ामणि ने उसका आवरण उलट दिया। स्वर्ण का पीलापन उस सुनहली संन्ध्या में विकीर्ण होने लगा। ममता चौंक उठी—

"इतना स्वर्ण यह कहाँ से आया ?"

"चुप रहो ममता, यह तुम्हारे लिये है।"

"तो क्या आपने म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया ? पिताजी! यह अनर्थ है, अर्थ नहीं। लौटा दीजिये। पिताजी! हम लोग ब्राह्मण हैं इतना सोना लेकर क्या करेंगे ?"

"इस पतनोन्मुख प्राचीन सामन्त-वंश का अन्त समीप है, बेटी। किसी भी दिन शेरशाह रोहिताश्व पर अधिकार कर सकता है; उस दिन मंत्रित्व न रहेगा, तब के लिये बेटी!"

"हे भगवान्! तब के लिये! इतना आयोजन! परम पिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस! पिताजी, क्या भीख न मिलेगी ? क्या कोई हिन्दू भू-पृष्ठ पर न बचा रह जायगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके ? यह असंभव है। फेर दीजिये पिताजी, मैं काँप रही हूँ—इसकी चमक आँखों को अंधा बना रही है!"

"मूर्ख है" — कह कर चूड़ामणि चले गये।

× × ×

दूसरे दिन जब डोलियों का ताँता भीतर आ रहा था, ब्राह्मण-मंत्री चूड़ामणि का हृदय धक्-धक् करने लगा। वह अपने को रोक न सका। उसने जाकर रोहिताश्व-दुर्ग के तोरण पर डोलियों का आवरण खुलवाना चाहा पठानों ने कहा—

"यह महिलाओं का अपमान करना है।"

बात बढ़ गई। तलवारें खिचीं, ब्राह्मण वहीं मारा गया और राजा रानी और कोष सब छली शेरशाह के हाथ पड़े; निकल गई ममता। डोली में भरे हुए पठान सैनिक दुर्ग भर में फैल गये, पर ममता न मिली।

२

काशी के उत्तर धर्मचक्र विहार, मौर्य और गुप्त सम्राटों की कीर्ति का खँडहर था। भग्न चूड़ा, तृण-गुल्मों से ढके हुए प्राचीर, ईंटों की ढेर में बिखरी हुई भारतीय शिल्प की विभूति, ग्रीष्म रजनी की चन्द्रिका में अपने को शीतल कर रही थी।

जहाँ पञ्चवर्गीय भिक्षु गौतम का उद्देश्य ग्रहण करने के लिये पहले मिले थे उसी स्तूप के भग्नावशेष की मलिन छाया में एक झोपड़ी के दीपालोक में एक स्त्री पाठ कर रही थी—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते..."

पाठ रुक गया। एक भीषण और हताश आकृति दीप के मंद प्रकाश में सामने खड़ी थी। स्त्री उठी, उसने कपाट बंद करना चाहा। परन्तु उस व्यक्ति ने कहा—" माता! मुझे आश्रय चाहिए।"

"तुम कौन हो?"—स्त्री ने पूछा।

"मैं मुग़ल हूँ। चौसा-युद्ध में शेरशाह से विपन्न होकर रक्षा चाहता हूँ। इस रात अब आगे चलने में असमर्थ हूँ।"

क्या शेरशाह से?"—स्त्री ने अपने ओठ काट लिये।

"हाँ, माता!

"परन्तु तुम भी वैसे ही क्रूर हो, वही भीषण रक्त की प्यास, वही निष्ठुर

प्रतिबिम्ब, तुम्हारे मुख पर भी है ! सैनिक ! मेरी कुटी में स्थान नहीं, जाओ कहीं दूसरा आश्रय खोज लो !"

"गला सूख रहा है, साथी छूट गये हैं, अश्व गिर पड़ा है—इतना थका हुआ हूँ, इतना !"—कहते-कहते वह व्यक्ति धम से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्माण्ड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा, यह विपत्ति कहाँ से आई ! उसने जल दिया, मुगल के प्राणों की रक्षा हुई। वह सोचने लगी—"सब विधर्मी दया के पात्र नहीं—मेरे पिता का वध करनेवाले आततायी !" घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

स्वस्थ होकर मुगल ने कहा—"माता ! तो फिर मैं चला जाऊँ ?

स्त्री विचार कर रही थी—"मैं ब्राह्मणी हूँ, मुझे तो अपने धर्म—अतिथि देव की उपासना—का पालन करना चाहिये। परन्तु यहाँ......नहीं-नहीं सभी विधर्मी दया के पात्र नहीं। परन्तु यह दया तो नहीं......कर्त्तव्य करना है। तब ?

मुगल अपनी तलवार टेक कर उठ खड़ा हुआ। ममता ने कहा—"क्या आश्चर्य है कि तुम भी छल करो; ठहरो।"

"छल ! नहीं, तब नहीं स्त्री ! जाता हूँ, तैमूर का वंशधर स्त्री से छल करेगा ? जाता हूँ। भाग्य का खेल है।"

ममता ने मन में कहा—"यहाँ कौन दुर्ग है ! यही झोपड़ी न; जो चाहे ले ले, मुझे तो अपना कर्त्तव्य करना पड़ेगा।" वह बाहर चली आई और मुगल से बोली—"जाओ भीतर, थके हुए भयभीत पथिक ! तुम चाहे कोई हो, मैं तुम्हें आश्रय देती हूँ। मैं ब्राह्मण हूँ; सब अपना धर्म छोड़ दें, तो मैं भी क्यों छोड़ दूँ ?" मुगल ने चन्द्रमा के मन्द प्रकाश में वह महिमामय मुखमण्डल देखा;

उसने मन-ही-मन नमस्कार किया। ममता पास की टूटी हुई दीवारों में चली गई। भीतर चली गई। भीतर थके पथिक ने झोपड़ी में विश्राम किया।

× × ×

प्रभात में खण्डहर की सन्धि से ममता ने देखा, सैकड़ों अश्वारोही उस प्रान्त में घूम रहे हैं। वह अपनी मूर्खता पर अपने को कोसने लगी।

अब उस झोपड़ी से निकल कर उस पथिक ने कहा—"मिरजा मैं यहाँ हूँ।"

शब्द सुनते ही प्रसन्नता की चीत्कार-ध्वनि से वह प्रान्त गूँज उठा। ममता अधिक भयभीत हुई। पथिक ने कहा—"वह स्त्री कहाँ है? उसे निकालो।" ममता छिपने के लिये अधिक सचेष्ट हुई। वह मृग–दाव में चली गई। दिन-भर उसमें से न निकली। संध्या में जब उन लोगों के जाने का उपक्रम हुआ, तो ममता ने सुना, पथिक घोड़े पर सवार होते हुए कह रहा है—"मिरजा! उस स्त्री को मैं कुछ दे न सका। उसका घर बनवा देना, क्योंकि मैंने विपत्ति में यहाँ विश्राम पाया था। यह स्थान भूलना मत।"—इसके बाद वे चले गये।

× × ×

चौसा के मुगल-पठान-युद्ध को बहुत दिन बीत गये। ममता अब सत्तर वर्ष की वृद्धा है। वह अपनी झोपड़ी में एक दिन पड़ी थी। शीतकाल का प्रभात था। उसका जीर्ण कंकाल खाँसी से गूँज रहा था। ममता की सेवा के लिए गांव की दो-तीन स्त्रियाँ उसे घेर कर बैठी थीं; क्योंकि वह आजीवन सबके सुख-दुख की समभागिनी रही।

ममता ने जल पीना चाहा, एक स्त्री ने सीपी से जल पिलाया। सहसा

एक अश्वारोही उसी झोपड़ी के द्वार पर दिखाई पड़ा। वह अपनी धुन में कहने लगा—"मिरजा ने जो चित्र बना कर दिया है, वह तो इसी जगह का होना चाहिए। वह बुढ़िया मर गई होगी, अब किससे पूछूँ कि एक दिन शाहंशाह हुमायूँ किस छप्पर के नीचे बैठे थे? यह घटना भी तो सैंतालीस वर्ष से ऊपर की हुई!"

ममता ने अपने विकल कानों से सुना। उसने पास की स्त्री से कहा—"उसे बुलाओ।"

अश्वारोही पास आया। ममता ने रुक-रुक कर कहा—"मैं नहीं जानती कि वह शाहंशाह था, या साधारण मुगल; पर एक दिन इसी झोपड़ी के नीचे वह रहा। मैंने सुना था कि वह मेरा घर बनवाने की आज्ञा दे चुका था! मैं आजीवन अपनी झोपड़ी खोदवाने के डर से भयभीत ही थी! भगवान ने सुन लिया, मैं आज इसे छोड़े जाती हूँ। अब तुम इसका मकान बनाओ या महल मैं अपने चिर-विश्राम-गृह में जाती हूँ!

वह अश्वारोही अवाक् खड़ा था। बुढ़िया के प्राण-पक्षी अनन्त में उड़ गये।

× × ×

वहाँ एक अष्टकोण मंदिर बना, और उस पर शिलालेख लगाया गया—

'सातों देश के नरेश हुमायूँ ने एक दिन यहाँ विश्राम किया था। उनके पुत्र अकबर ने उसकी स्मृति में यह गगन चुम्बी मन्दिर बनाया।"

पर उसमें ममता का कहीं नाम नहीं।

—जयशङ्कर प्रसाद

माता का हृदय

माधवी की आँखों में सारा संसार अँधेरा हो रहा था। कोई अपना मददगार न दिखाई देता था। कहीं आशा की झलक न थी। उस निर्जन घर में वह अकेली पड़ी रोती थी और कोई आँसू पोछने वाला न था उसके पति को मरे २२ वर्ष हो गये थे। घर में कोई सम्पत्ति न थी। उसने न जाने किन तकलीफों से अपने बच्चे को पाल-पोस कर बड़ा किया था। वही जवान बेटा आज उसकी गोद से छीन लिया गया था और छीनने वाले कौन थे? अगर मृत्यु ने छीना होता तो वह सब्र कर लेती। मौत से किसी को द्वेष नहीं होता। मगर स्वार्थियों के हाथों यह अत्याचार असह्य हो रहा था। इस घोर सन्ताप की दशा में उसका जी रह-रह कर इतना विकल हो जाता कि इसी समय चलूँ और उस अत्याचारी से इसका बदला लूँ जिसने उस पर यह निष्ठुर आघात किया है। मारूँ या मर जाऊँ। दोनों ही में सन्तोष हो जायगा। कितना सुन्दर, कितना होनहार बालक था! यही उसके पिता की निशानी, उसके जीवन का आधार, उसकी उम्र भर की कमाई थी। वही लड़का इस वक्त जेल में पड़ा न जाने क्या-क्या तकलीफें झेल रहा होगा! और उसका अपराध क्या था? कुछ नहीं। सारा मुहल्ला उस पर जान देता था विद्यालय के अध्यापक उस पर जान देते थे। अपने बेगाने सभी तो उसे प्यार करते थे। कभी उसकी कोई शिकायत सुनने ही में नहीं आयी। ऐसे बालक की माता होने पर अन्य माताएँ उसे बधाई देती थीं। कैसा सज्जन, कैसा उदार, कैसा परमार्थी। खुद

भूखों सो रहे मगर क्या मजाल कि द्वार पर आनेवाले अतिथि को रूखा जवाब दे। ऐसा बालक क्या इस योग्य था कि जेल में जाता! उसका अपराध यही था। वह कभी-कभी सुननेवालों को अपने दुखी भाइयों का दुखड़ा सुनाया करता था, अत्याचार से पीड़ित प्राणियों की मदद के लिए हमेशा तैयार रहता था। क्या यही उसका अपराध था? दूसरों की सेवा करना भी अपराध है? किसी अतिथि को आश्रय देना भी अपराध है?

इस युवक का नाम आत्मानन्द था। दुर्भाग्यवश उसमें वे सद्गुण थे जो जेल का द्वार खोल देते हैं। वह निर्भीक था, स्पष्टवादी था, साहसी था, स्वदेश-प्रेमी था, निस्स्वार्थ था, कर्तव्यपरायण था। जेल जाने के लिए इन्हीं गुणों की जरूरत है। स्वाधीन प्राणियों के लिए वे गुण स्वर्ग का द्वार खोल देते हैं, पराधीनों के लिए नरक के! आत्मानन्द के सेवा-कार्य ने, उसकी वक्तृताओं ने और उसके राजनीतिक लेखों ने उसे सरकारी कर्मचारियों की नजरों में चढ़ा दिया था। सारा पुलिस-विभाग नीचे से ऊपर तक, उससे सतर्क रहता था, सबकी निगाहें उस पर लगी रहती थीं। आखिर ज़िले में एक भयंकर डाके ने उन्हें इच्छित अवसर प्रदान कर दिया। आत्मानन्द के घर की तलाशी हुई, कुछ पत्र और लेख मिले जिन्हें पुलिस ने डाके का बीजक सिद्ध किया। लगभग २० युवकों की एक टोली फँसा ली गयी। आत्मानन्द इनका मुखिया ठहराया गया। शहादतें तैयार हुईं। इस बेकारी और गिरानी के ज़माने में आत्मा से ज्यादा सस्ती और कौन वस्तु हो सकती है! बेचने को और किसी के पास रहा ही क्या है। नाममात्र का प्रलोभन दे कर अच्छी-से अच्छी शहादतें मिल सकती हैं, और पुलिस के हाथों में पड़ कर तो निकृष्ट-से-निकृष्ट गवाहियाँ भी देव-वाणी का महत्त्व प्राप्त कर लेती हैं। शहादतें मिल गयीं, महीने भर तक

मुक़दमा चला, मुक़दमा क्या चला एक स्वांग चलता रहा, और सारे अभियुक्तों को सज़ाएँ दे दी गयीं ! माधवी रोज़ कचहरी जाती; एक कोने में बैठी सारी कार्रवाई देखा करती। मानवी चरित्र कितना निर्दय, कितना नीच है, इसका उसे तब तक अनुमान भी न हुआ था। जब आत्मानन्द को सज़ा सुना दी गयी और वह माता को प्रणाम करके सिपाहियों के साथ चला तो माधवी मूर्छित हो कर ज़मीन पर गिर पड़ी। दो-चार दयालु सज्जनों ने उसे एक ताँगे पर बैठा कर घर तक पहुँचाया। जब से वह होश में आयी है उसके हृदय में शूल-सा उठ रहा है। किसी तरह धैर्य नहीं होता। उस घोर आत्मवेदना की दशा में अब उसे अपने जीवन का केवल एक लक्ष्य दिखायी देता है, और वह इस अत्याचार का बदला है।

अब तक पुत्र उसके जीवन का आधार था। अब शत्रुओं से बदला लेना ही उसके जीवन का आधार होगा। जीवन में अब उसके लिए कोई आशा न थी। इस अत्याचार का बदला ले कर वह अपना जन्म सफल समझेगी। इस अभागे नर-पिशाच बागची ने जिस तरह उसे रक्त के आँसू रुलाये हैं उसी भाँति वह भी उसे रुलायेगी। नारी हृदय कोमल है, लेकिन केवल अनुकूल दशा में पुरुष दूसरों को दबाता है स्त्री शील और विनय की देवी हो जाती है लेकिन जिसके हाथों अपना सर्वनाश हो गया हो उसके प्रति स्त्री को पुरुष से कम घृणा और क्रोध नहीं होता। अन्तर इतना ही है कि पुरुष शस्त्रों से काम लेता है, स्त्री कौशल से।

रात भीगती जाती थी, और माधवी उठने का नाम न लेती थी। उसका दुख प्रतिकार के आवेश में विलीन होता जाता था। यहाँ तक कि इसके सिवा उसे और किसी बात की याद ही न रही। उसने सोचा, कैसे यह काम होगा ?

कभी घर से नहीं निकली ! वैधव्य के २२ साल इसी घर में कट गये; लेकिन अब निकलूँगी। जबर्दस्ती निकलूँगी, भिखारिन बनूँगी, टहलनी बनूँगी, झूठ बोलूँगी, सब कुकर्म करूँगी ! सत्कर्म के लिए संसार में स्थान नहीं। ईश्वर ने निराश होकर कदाचित् इसकी ओर से मुँह फेर लिया है। जभी तो यहाँ ऐसे-ऐसे अत्याचार होते हैं और पापियों को दण्ड नहीं मिलता ! अब इन्हीं हाथों से उसे दण्ड दूँगी।

(२)

संध्या का समय था। लखनऊ के एक सजे हुए बँगले में मित्रों की महफिल जमी हुई थी। गाना-बजाना हो रहा था। एक तरफ़ आतशबाजियाँ रखी हुई थीं। दूसरे कमरे में मेजों पर खाना चुना जा रहा था। चारों तरफ पुलिस के कर्मचारी नज़र आते थे। यह पुलिस के सुपरिटेंडेंट मिस्टर बागची का बँगला है। कई दिन हुए उन्होंने एक मारके का मुक़दमा जीता था। अफ़सरों ने खुश हो कर उनकी तरक्की कर दी थी। और उसी की खुशी में यह उत्सव मनाया जा रहा था। यहाँ आये दिन ऐसे उत्सव होते रहते थे। मुफ्त के गवैये मिल जाते थे, मुफ्त की आतशबाजी; फल और मेवे और मिठाइयाँ आधे दामों पर बाज़ार से आ जाती थीं और चट दावत हो जाती थी। दूसरों के जहाँ सौ लगते, वहाँ इनका दस से काम चल जाता था। दौड़-धूप करने को सिपाहियों की फ़ौज थी ही ! और यह मारके का मुक़दमा क्या था ? वही जिसमें निरपराध युवकों को बनावटी शहादतों से जेल में ठूँस दिया गया था।

गाना समाप्त होने पर लोग भोजन करने बैठे। बेगार के मजदूर और पल्लेदार जो बाज़ार से दावत और सजावट के सामान लाये थे, रोते या दिल में गालियाँ देते चले गये थे; पर एक बुढ़िया अभी तक द्वार पर बैठी हुई थी

अन्य मजदूरों की तरह वह भुनभुना कर काम न करती थी। हुक्म पाते ही खुश-दिल मजदूर की तरह दौड़-दौड़ कर हुक्म बजा लाती थी। यह माधवी थी, जो इस समय मजदूरनी का वेष धारण करके अपना घातक संकल्प पूरा करने आयी थी।

मेहमान चले गये। महफ़िल उठ गयी। दावत का सामान समेट दिया गया। चारों तरफ सन्नाटा छा गया था; लेकिन माधवी अभी तक वहीं बैठी थी।

सहसा मिस्टर बागची ने पूछा—बुड्ढी, तू यहाँ क्यों बैठी है? तुझे कुछ खाने को मिल गया?

माधवी—हाँ हुजूर मिल गया।

बागची—तो जाती क्यों नहीं?

माधवी—कहाँ जाऊँ सरकार, मेरा कोई घर-द्वार थोड़े ही है? हुकुम हो तो यहीं पड़ रहूँ। पाव-भर आटे की परवस्ती हो जाय हुजूर।

बागची—नौकरी करेगी?

माधवी—क्यों नहीं करूँगी सरकार, यही तो चाहती हूँ।

बागची—लड़का खेला सकती है?

माधवी—हाँ हजूर, यह मेरे मन का काम है।

बागची—अच्छी बात है। तू आज ही से रह। जा घर में देख जो काम बतायें वह कर।

(३)

एक महीना गुजर गया। माधवी इतना तन-मन से काम करती है कि सारा घर उससे खुश है। बहूजी का मिज़ाज बहुत ही चिड़चिड़ा है। वह

दिनभर खाट पर पड़ी रहती है और बात-बात पर नौकरों पर झल्लाया करती है। लेकिन माधवी उनकी घुड़कियों को भी सहर्ष सह लेती है। अब तक मुश्किल से कोई दाई एक सप्ताह से अधिक ठहरी थी। माधवी ही का कलेजा है कि जली-कटी सुन कर भी मुख पर मैल नहीं आने देती।

मिस्टर बागची के कई लड़के हो चुके थे: पर यही सबसे छोटा बच्चा बच रहा था। बच्चे पैदा तो हृष्ट-पुष्ट होते किन्तु जन्म लेते ही उन्हें एक-न-एक रोग लग जाता था, और कोई दो-चार महीने, कोई सालभर जी कर चल देते थे। माँ-बाप दोनों इस शिशु पर प्राण देते थे। उसे ज़रा ज़ुकाम भी हो जाता तो दोनों विकल हो जाते। स्त्री-पुरुष दोनों शिक्षित थे; पर बच्चे की रक्षा के लिए टोना-टोटका, दुवा-तावीज़, जंतर-मंतर, एक से भी उन्हें इनकार न था।

माधवी से यह बालक इतना हिल गया कि एक क्षण के लिए भी उसकी गोद से न उतरता। वह कहीं एक क्षण के लिए चली जाती तो रो-रोकर दुनिया सिर पर उठा लेता। वह सुलाती तो सोता, वह दूध पिलाती तो पीता, वह खेलाती तो खेलता, उसी को वह अपनी माता समझता। माधवी के सिवा उसके लिए संसार में और कोई अपना न था। बाप को तो वह दिन भर में केवल दो-चार बार देखता और समझता यह कोई परदेशी आदमी है। माँ आलस्य और कमज़ोरी के मारे उसे गोद में ले कर टहल न सकती थी। उसे वह अपनी रक्षा का भार सँभालने के योग्य न समझता था; और नौकर-चाकर उसे गोद में लेते तो इतनी बेदर्दी से कि उसके कोमल अङ्गों में पीड़ा होने लगती थी। कोई उसे ऊपर उछाल देता था, यहाँ तक कि अबोध शिशु का कलेजा मुँह को आ जाता था। उन सबों से यह डरता था। केवल माधवी थी जो उसके स्वभाव को समझती थी। वह जानती थी कि कब क्या करने से

बालक प्रसन्न होगा, इसलिए बालक को भी उससे प्रेम था ।

माधवी ने समझा था, यहाँ कंचन बरसता होगा; लेकिन उसे यह देख कर कितना विस्मय हुआ कि बड़ी मुश्किल से महीने का खर्च पूरा पड़ता है। नौकरों से एक-एक पैसे का हिसाब लिया जाता था और बहुधा आवश्यक वस्तुएँ भी टाल दी जाती थीं। एक दिन माधवी ने कहा—बच्चे के लिए कोई तेजगाड़ी क्यों नहीं मँगवा देतीं। गोद में उसकी बाढ़ मारी जाती होगी।

मिसेज़ बागची ने कुंठित हो कर कहा—कहाँ से मँगवा दूँ ? कम-से-कम ५०-६० रुपये में आयगी। इतने रुपये कहाँ हैं ?

माधवी—मालकिन, आप भी ऐसा कहती हैं !

मिसेज़ बागची—झूठ नहीं कहती। बाबूजी की पहली स्त्री के पाँच लड़कियाँ और हैं। सब इस समय इलाहाबाद के एक स्कूल में पढ़ रही हैं। बड़ी की उम्र १५-१६ वर्ष से कम न होगी। आधा वेतन तो उधर ही चला जाता है। फिर उसकी शादी की भी तो फ़िक्र है। पाँचों के विवाह में कम-से कम २५ हज़ार लगेंगे। इतने रुपये कहाँ से आयेंगे। मैं तो चिंता के मारे मरी जाती हूँ। मुझे कोई दूसरी बीमारी नहीं है, केवल यही चिंता का रोग है।

माधवी—घूस भी तो मिलती है।

मिसेज़ बागची—बूढ़ी, ऐसी कमाई में बरकत नहीं होती। यही क्यों, सच पूछो तो इसी घूस ने हमारी यह दुर्गति कर रखी है। क्या जाने औरों को कैसे हज़म होती है। यहाँ तो जब ऐसे रुपये आते हैं तो कोई-न-कोई नुक़सान भी अवश्य हो जाता है। एक आता है तो दो लेकर जाता है। बार-बार मना करती हूँ, हराम की कौड़ी घर में न लाया करो; लेकिन मेरी कौन सुनता है।

बात यह थी कि माधवी को बालक से स्नेह हो गया था। उसके अमंगल की कल्पना भी वह न कर सकती थी। वह अब उसीकी नींद सोती और उसीकी नींद जागती थी। अपने सर्वनाश की बात याद करके एक क्षण के लिए उसे बागची पर क्रोध तो हो आता था और घाव फिर हरा हो जाता था पर मन पर कुत्सित भावों का आधिपत्य न होता था। घाव भर रहा था, केवल ठेस लगने से दर्द हो जाता था। उसमें स्वयं टीस या जलन न थी। इस परिवार पर अब उसे दया आती थी। सोचती, बेचारे यह छीन-झपट न करें तो कैसे गुज़र हो! लड़कियों का विवाह कहाँ से करेंगे। स्त्री को जब देखो बीमार ही रहती है। उस पर बाबूजी को एक बोतल शराब भी रोज़ चाहिये। यह लोग तो स्वयं अभागे हैं। जिसके घर में ५-५ क्वाँरी कन्याएँ हों, बालक हो होकर मर जाते हों, पत्नी सदा बीमार रहती हो, स्वामी शराब का लती हो, उस पर तो यों ही ईश्वर का कोप है। इनसे तो मैं अभागिनी ही अच्छी!

(४)

दुर्बल बालकों के लिए बरसात बुरी बला है। कभी खाँसी है, कभी ज्वर, कभी दस्त। जब हवा में ही शीत भरी हो तो कोई कहाँ तक बचाये। माधवी एक दिन अपने घर चली गयी थी। बच्चा रोने लगा तो माँ ने एक नौकर को दिया, इसे बाहर से बहला ला। नौकर ने बाहर ले जा कर हरी-हरी घास पर बैठा दिया! पानी बरस कर निकल गया था। भूमि गीली हो रही थी। कहीं-कहीं पानी भी जमा हो गया था। बालक को पानी में छपके लगाने से ज्यादा प्यारा और कौन खेल हो सकता है। खूब प्रेम से उमक-उमक कर पानी में लोटने लगा। नौकर बैठा और आदमियों के साथ गप-शप करता रहा। इस तरह घण्टों गुज़र गये! बच्चे ने खूब सर्दी खायी। घर आया तो उसकी नाक बह

रही थी। रात को माधवी ने आकर देखा तो बच्चा खाँस रहा था। आधी रात के करीब उसके गले से खुरखुर की आवाज़ निकलने लगी। माधवी का कलेजा सन से हो गया। स्वामिनी को जगा कर बोली—देखो तो बच्चे को क्या हो गया है। क्या सर्दी वर्दी तो नहीं लग गयी। हाँ, सर्दी ही तो मालूम होती है।

स्वामिनी हकबका कर उठ बैठी और बालक की खुरखुराहट सुनी तो पाँवतले से ज़मीन निकल गयी। यह भयंकर आवाज़ उसने कई बार सुनी थी और उसे खूब पहचानती थी। व्यग्र हो कर बोली ज़रा आग जलाओ। थोड़ा सा चोकर ला कर एक पोटली बनाओ सेकने से लाभ होता है। इन नौकरों से तंग आ गयी। आज कहार ज़रा देर के लिए बाहर ले गया था, उसीने सर्दी में छोड़ दिया होगा।

सारी रात दोनों बालक को सेकती रहीं। किसी तरह सवेरा हुआ। मिस्टर बागची को खबर मिली तो सीधे डॉक्टर के यहाँ दौड़े। खैरियत इतनी थी कि जल्द एहतियात की गयी थी। तीन दिन में बच्चा अच्छा हो गया; लेकिन इतना दुर्बल हो गया कि उसे देख कर डर लगता था। सच पूछो तो माधवी की तपस्या ने बालक को बचाया। माता सोती, पिता सो जाता, किन्तु माधवी की आँखों में नींद न थी। खाना-पीना तक भूल गयी। देवताओं की मनौतियाँ करती थी, बच्चे की बलाएँ लेती थी, बिलकुल पागल हो गयी थी। यह वही माधवी है जो अपने सर्वनाश का बदला लेने आयी थी। अपकार की जगह उपकार कर रही थी। विष पिलाने आयी थी, सुधा पिला रही थी। मनुष्य में देवता कितना प्रबल है!

प्रातःकाल का समय था। मिस्टर बागची शिशु के झूले के पास बैठे हुए थे। स्त्री के सिर में पीड़ा हो रही थी। वह चारपाई पर लेटी हुई थी, और

माधवी समीप बैठी बच्चे के लिए दूध गरम कर रही थी। सहसा बागची ने कहा—बूढ़ा, हम जब तक जियेंगे तुम्हारा यश गायेंगे। तुमने बच्चे को जिला लिया।

स्त्री—यह देवी बन कर हमारा कष्ट निवारण करने के लिए आ गयी। यह न होती तो न-जाने क्या होता। बूढ़ा, तुमसे मेरी एक विनती है। यों तो मरना-जीना प्रारब्ध के हाथ है, लेकिन अपना-अपना पौरा भी बड़ी चीज़ है। मैं अभागिनी हूँ। अबकी तुम्हारे पुण्य-प्रताप से बच्चा सँभल गया। मुझे डर लग रहा है कि ईश्वर इसे हमारे हाथ से छीन न लें। सच कहती हूँ बूढ़ा, मुझे इसको गोद में लेते डर लगता है। इसे तुम आज से अपना बचा समझो। तुम्हारा हो कर शायद बच जाय, हम अभागे हैं। हमारा हो कर इस पर नित्य कोई-न-कोई संकट आता रहेगा। आज से तुम इसकी माता हो जाओ। तुम इसे अपने घर ले जाओ। जहाँ चाहे ले जाओ। तुम्हारी गोद में दे कर मुझे फिर कोई चिन्ता न रहेगी। वास्तव में तुम्हीं इसकी माता हो। मैं तो राक्षसी हूँ।

माधवी—बहूजी, भगवान् सब कुशल करेंगे, क्यों जी इतना छोटा करती हो?

मिस्टर बागची—नहीं-नहीं बूढ़ी माता, इसमें कोई हरज नहीं है। मैं मस्तिष्क से तो इन बातों को ढकोसला ही समझता हूँ; लेकिन हृदय से इन्हें दूर नहीं कर सकता। मुझे स्वयं मेरी माताजी ने एक धोबिन के हाथ बेच दिया था। मेरे तीन भाई मर चुके थे। मैं जो बच गया तो माँ-बाप ने समझा, बेचने ही से इसकी जान बच गयी। तुम इस शिशु को पालो-पोसो। इसे अपना पुत्र समझो। खर्च हम बराबर देते रहेंगे। इसकी कोई चिन्ता मत करना। कभी-

कभी जब हमारा जी चाहेगा, आ कर देख लिया करेंगे। हमें विश्वास है कि तुम इसकी रक्षा हम लोगों से कहीं अच्छी तरह कर सकती हो। मैं कुकर्मी हूँ। जिस पेशे में हूँ, उसमें कुकर्म किये बग़ैर काम नहीं चल सकता। झूठी शहादतें बनानी ही पड़ती हैं, निरपराधों को फँसाना ही पड़ता है। आत्मा इतनी दुर्बल हो गयी है कि प्रलोभन में पड़ ही जाती है। जानता हूँ कि बुराई का फल बुरा ही होता है; पर परिस्थिति से मजबूर हूँ। अगर ऐसा न करूँ तो आज नालायक बना कर निकाल दिया जाऊँ। अंगरेज हज़ारों भूलें करें, कोई नहीं पूछता। हिन्दुस्तानियों को तो कोई बड़ा पद न मिले, वही अच्छा। पद पाकर तो उनकी आत्मा का पतन हो जाता है। उनको अपनी हिन्दुस्तानियत का दोष मिटाने के लिए कितनी ही ऐसी बातें करनी पड़ती हैं, जिनका अंगरेज़ के दिल में कभी ख़याल ही नहीं पैदा हो सकता। तो बोलो स्वीकार करती हो?

माधवी गद्गद हो कर बोली—बाबूजी, आपकी यह इच्छा है तो मुझसे भी जो कुछ बन पड़ेगा, आपकी सेवा कर दूँगी। भगवान् बालक को अमर करें, मेरी तो उनसे यही विनती है।

माधवी को ऐसा मालूम हो रहा था कि स्वर्ग के द्वार सामने खुले हैं और स्वर्ग की देवियाँ उसे आँचल फैला-फैला कर आशीर्वाद दे रही हैं, मानो उसके अन्तस्तल में प्रकाश की लहरें-सी उठ रही हैं। इस स्नेहमय सेवा में कितनी शान्ति थी?

बालक अभी तक चादर ओढ़े सो रहा था। माधवी ने दूध गरम हो जाने पर उसे झूले पर से उठाया, तो चिल्ला पड़ी। बालक की देह ठंडी हो गयी थी और मुख पर वह पीलापन आ गया था जिसे देख कर कलेजा हिल जाता है, कंठ से आह निकल आती है और आँखों से आँसू बहने लगते हैं।

जिसने उसे एक बार देखा है फिर कभी नहीं भूल सकता। माधवी ने शिशु को गोद से चिमटा लिया, हालांकि नीचे उतार देना चाहिए था।

कुहराम मच गया। माँ बच्चे को गले से लगाये रोती थी; पर उसे ज़मीन पर न सुलाती थी। क्या बातें हो रही थीं और क्या हो गया। मौत को धोखा देने में आनन्द आता है। वह उस वक्त कभी नहीं आती जब लोग उसकी राह देखते होते हैं। रोगी जब संभल जाता है, जब वह पथ्य लेने लगता है, उठने-बैठने लगता है, घर भर खुशियाँ मनाने लगता है, सबको विश्वास हो जाता है कि संकट टल गया, उस वक्त घात में बैठी हुई मौत सिर पर आ जाती है। यही उसकी निष्ठुर लीला है!

आशाओं के बाग लगाने में हम कितने कुशल हैं। यहाँ हम रक्त के बीज बो कर सुधा के फल खाते हैं। अग्नि से पौदों को सींच कर शीतल छाँह में बैठते हैं। हा मन्द बुद्धि!

दिन-भर मातम होता रहा, बाप रोता था, माँ तड़पती थी और माधवी बारी-बारी से दोनों को समझाती थी। यदि अपने प्राण दे कर वह बालक को जिला सकती तो इस समय अपने को धन्य समझती। वह अहित का संकल्प करके यहाँ आयी थी और आज जब उसकी मनोकामना पूरी हो गई और उसे ख़ुशी से फूला न समाना चाहिए था, उसे उससे कहीं घोर पीड़ा हो रही थी जो अपने पुत्र की जेल-यात्रा से हुई थी। रुलाने आयी थी और खुद रोती जा रही थी। माता का हृदय दया का आगार है। उसे जलाओ तो उसमें से दया की ही सुगन्ध निकलती है। पीसो तो दया का ही रस निकलता है। वह देवी है। विपत्ति की क्रूर लीलाएँ भी उस स्वच्छ और निर्मल स्रोत को मलिन नहीं कर सकतीं!

वीर श्रेष्ठ

(१)

ग्रीष्म ऋतु थी; ज्येष्ठ मास था । गर्म वायु शीतल हो चली थी । रजीतपुर ग्राम के ढोर गाँव की ओर लौट रहे थे । उसी समय में एक चौपाल के आगे चारपाई पर एक अर्द्धवयस्क व्यक्ति बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ा रहा था , यह व्यक्ति दीर्घकाय तथा पुष्टअङ्ग था, मुखमण्डल पर खुले वायुमण्डल में रहने के कारण, सुर्खी थी । नेत्र बड़े–बड़े और कुछ उभरे हुए थे; मूछें बड़ी–बड़ी और ऊपर को चढ़ी हुई थीं । उसमें इधर–उधर चमकने वाले श्वेत बाल यौवन की विदा और वृद्धावस्था के आगमन की सूचना दे रहे थे ।

यह व्यक्ति हुक्का पीता जाता था और अपने ही आप मुसकरा रहा था । उसी समय एक नवयुवक उसके पास आया और बोला—"चाचा पाँव छुई" वह व्यक्ति बोला—"जीते रहो बेटा—आओ बैठो ।"

युवक चारपाई के पैताने की ओर बैठ गया । थोड़ी देर तक युवक चुपचाप बैठा रहा । वह व्यक्ति भी मौन धारण किये हुये हुक्का पीता रहा ।

हठात् उस व्यक्ति ने युवक से पूछा—"कहो बबुआ ; कहाँ से आ रहे हो ?"

युवक ने उत्तर दिया—"आ तो घर ही से रहा हूँ । अभी ढोरों को चारा पानी दे कर छुट्टी पाई थी, जी में आया जरा चाचा के पास चलें ।"

उस व्यक्ति ने पूछा— गाँव के क्या समाचार हैं ।

युवक—समाचार अच्छे हैं, आप पर चढ़ाई करने की सलाहें हो रही हैं।

वह व्यक्ति मुसकराया, परन्तु उसने मुख से कुछ नहीं कहा।

युवक—आज सबेरे सुन्दरसिंह कह रहे थे कि जो मेरा नाम सुन्दरसिंह है तो मैं उजागरसिंह के हाथ पैर तोड़ के छोड़ूँगा। वह व्यक्ति जिसका नाम उजागरसिंह था, पुनः मुसकराकर बोला—"बड़ी बात है, सुन्दरसिंह में इतनी हिम्मत तो हुई।"

युवक—हाँ, सो मैंने सोचा कि चलो उजागर चाचा को सचेत कर दूँ।

उजागरसिंह बोला—बेटा की बातें, अरे मुझे सचेत करना न करना दोनों एक हैं। मैं तो सदा एक सा रहता हूँ। मुझे क्या, चाहे जिस दिन आ जायँ, मैं हर समय तैयार हूँ। मुझें तो बड़ी प्रसन्नता है कि सुन्दरसिंह में कुछ गर्मी तो है। जो ऐसा न हो वह ठाकुर ही नहीं।

युवक आश्चर्यान्वित हो कर बोला—चाचा आप तो सुन्दरसिंह की प्रशंसा करते हैं।

उजागरसिंह ने कहा—हाँ मैं निस्सन्देह प्रशंसा करता हूँ। जो प्रशंसा की बात होगी उसकी सदा प्रशंसा करूँगा। सुन्दरसिंह ठाकुरों की सी बात करता है इसलिए मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ बेटा, ठाकुर ऐसे ही होते हैं। ठाकुर कभी किसी से दब कर बात नहीं करता। और बेटा बच्चनसिंह तुझसे भी मैं यही कहूँगा कि कभी किसी से दब कर बात न करना। वैसे जो बात अच्छी और सच्ची हो वही करना, पर बात आ पड़ने पर कभी किसी से न दबना—सच्चे क्षत्रिय का यही धर्म है। गाँव में बड़े बड़े अकड़बाज और लठधारी हैं, पर आज तक किसी ने मेरे लिए ऐसी बात नहीं कही; पर सुन्दरसिंह ऐसा कहता है—बड़ी हिम्मत का काम है।

बच्चनसिंह ने कहा— खैर मैंने आपको जता दिया अब आप जानें आपका काम

उजागरसिंह—तूने बड़ा अच्छा किया मैं जानता हूँ तू मुझसे स्नेह रखता है। पर यदि तू मुझसे न भी कहता तो तब भी मेरी कोई हानि नहीं थी। मेरा कोई कुछ बना बिगाड़ नहीं सकता। दूसरे मैं तो हर समय मरने पर कमर कसे रहता हूँ। किसी सच्चे क्षत्रिय के हाथों मेरी मौत हो जाय तो इससे बढ़ कर और क्या बात है। क्षत्रिय युद्ध ही में मरते हैं, चारपाई पर कभी नहीं मरते। बेटा, ये पहले की बातें जाती रहीं। अब न क्षत्रिय रहे और न क्षत्रियपन। सब एक ही घाट पानी पीते हैं।

बचनसिंह बोला—हाँ चाचा यह तो आप ठीक ही कहते हैं।

उसी समय एक और व्यक्ति आ गया। उसे देख कर उजागरसिंह बोला— आओ भाई बसन्तसिंह—बैठो।

बसन्तसिंह भी उजागरसिंह का समवयस्क था। वह उसी चारपाई पर एक कोने में बैठ गया। बसन्तसिंह के सामने हुक्का खिसका कर उजागरसिंह ने कहा—लेओ, पियो।

बसन्तसिंह ने हुक्का ठीक करके पीना आरम्भ किया। दो तीन कश लेने के पश्चात् उसने पूछा—काहे; उजागर भाई, क्या बातें हो रही थीं।

उजागरसिंह— कुछ नहीं भइया; ये ही गाँव-गली की बात-चीत हो रही थी। सुन्दरसिंह हमें मारने कहते हैं।

बसन्तसिंह ने हुक्के की नली छोड़ दी और उजागरसिंह की ओर देख कर कहा—कौन, सुन्दरसिंह ?

उजागरसिंह—हाँ, सुन्दरसिंह।



बसन्तसिंह—अरे उसकी ऐसी तैसी। उसकी इतनी हिम्मत कबसे हुई जिस दिन कहो, घर के भीतर घुस के मारूँ। भइया के हुक्म भर की देर है। अभी कल नंगे घूमते थे आज तीसमारखाँ हो गये।

उजागरसिंह ने मुसकरा कर कहा—तो भइया, इसमें हरज क्या है। ये तो खुशी की बात है कि हमारे लड़के ऐसे उठ रहे हैं। लड़कों का हौसला है, होने दो, उनके हौसले को पस्त नहीं करना चाहिए। जब मारने आवेगा तब देखा जायगा।

बसन्तसिंह—अरे भइया तुम्हें साला क्या खा कर मारेगा। तुम एक लप्पर मार देओ तो बुखार आ जाय। उँह, तुम्हें मारेगा। 'बाप न मारी-मींढकी बेटा तीरन्दाज।'

उजागरसिंह--भाई, मैं उसकी इस बात पर मुग्ध हूँ। उसकी इतनी हिम्मत तो है।

बसन्तसिंह—अरे मरी सुसरी ऐसी हिम्मत। बड़े-छोटे का भी तो ध्यान रक्खा जाता है। अभी कान पकड़ के दो तमाँचे मार दूं तो रोता हुआ घर-जाय —बातें ऐसी करता है।

इस अवसर पर बचनसिंह बोल उठा—बसन्त चाचा, सो डौल नहीं है। कान पकड़कर तमांचे मारना खेल नहीं है, वह भी बड़ा हथछूट है। उसके शरीर में बल भी बहुत है। रोज कसरत करता है, गाँव में उसके मुक़ाबिले में उजागर चाचा को छोड़ कर कोई लाठी चला नहीं सकता। ऐसा वैसा थोड़ा ही है। देखते नहीं हो हाथी का बच्चा सा हो रहा है। भैंस का पाँच सेर दूध रोज़ पी जाता है, पाव भर घी रोज़ खा जाता है। रोज़ अखाड़े में चार जवानों को ज़ोर कराता है।

बसन्तसिंह हँस कर बोला—बेटा, ये सब बातें तुम्हारे से छोकरों के लिए हैं। हमारे सामने वह क्या ठहर सकता है। हम लोगों ने जितना दूध-घी खा लिया उतना आज दिन किसी को पानी नसीब नहीं। (हाथ दिखा कर) ये हड्डियाँ लोहे की हैं। जिस दिन सामना पड़ जायगा उस दिन अम्माँ याद आवेगी।

उजागरसिंह मुस्करा कर बोला—भइया, तुम भी किस की बातों में लगे हो। अरे कहने दो। मैं तो कह चुका, लड़कों की हिम्मत इसी तरह बढ़ती रहे तो अच्छा है। भई मुझे तो प्रसन्नता है।

बसन्तसिंह—हिम्मत बढ़ाने के लिए तो कोई बुरी बात नहीं परन्तु वैसे लड़कों को मुँह लगाना ठीक नहीं।

उजागरसिंह—खैर देखा जायगा। चिन्ता क्या है?

(२)

सुन्दरसिंह अपनी चौपाल में बैठा हुआ था—पास उसके इष्ट-मित्र बैठे थे। सुन्दरसिंह एक सुन्दर तथा बलिष्ठ युवक था। वयस २४, २५ वर्ष की थी। मुख पर ब्रह्मचर्य का तेज था। ये लोग आपस में बातें कर रहे थे, उसी समय बसन्तसिंह उधर से निकले। उन्हें देखते ही सुन्दरसिंह बोल उठा—चाचा, चरण छुई। बसन्तसिंह ने उत्तर दिया...'चिरंजीव रहो।' अरे बेटा सुन्दर यह गाँव में कैसी खबरें उड़ रही हैं—तुम उजागरसिंह से लड़ाई ठान बैठे हो।

सुन्दरसिंह छाती ऊँची करके बोला—'जो कुछ आपने सुना वह ठीक है।'

बसन्तसिंह खड़े हो गये, बोले—'आखिर ऐसी कौन बात हुई जो तुम

इतने चिढ़ गये ?'

सुन्दरसिंह—'अब चाचा बात क्या बताऊँ !'

बसन्तसिंह—'आखिर बात तो कुछ होगी, बिना बात तो ऐसा हो ही नहीं सकता ।'

सुन्दरसिंह—'बात क्यों नहीं है—मैं पागल तो हूँ नहीं जो बिना कारण किसी से लड़ाई मोल लूँ ।'

बसन्तसिंह—'तो वही तो मैं पूछता हूँ कि बात क्या है ।'

सुन्दरसिंह—'चाचा यहाँ आकर बैठो तो बताऊँ ।'

बसन्तसिंह चौपाल में चले गये और एक चारपाई पर बैठ कर बोले—'हाँ बताओ ।'

सुन्दरसिंह—बात यह है कि परसों रात को हमारी भैंस खुल गई थी सो घूमती घामती कहीं उनके खेत में चली गई ! भगवान जाने वह कब खुली और कब खेत में पहुँची—मुझे कुछ मालूम नहीं। मैं भोजन करके उठा था उसी समय एक आदमी ने आकर कहा—'तुम्हारी भैंस उजागरसिंह के खेत में घुस गई थी सो उन्होंने काँजीहौस भिजवा दी ।' पहले तो मुझे कुछ विश्वास नहीं हुआ, मैंने खबर लानेवाले से कहा 'उजागर चाचा तो ऐसा करेंगे नहीं, किसी और ने भिजवा दी होगी ।'

उस आदमी ने कहा—'नहीं भैया, खास उजागरसिंह ने ऐसा किया। जब उनके आदमियों ने भैंस पकड़ी तो उन्होंने पूछा—'सुन्दरसिंह की मालूम होती है ।' इतना सुनते ही पहले तो वह कुछ देर तक सोचते रहे फिर बोले—'किसी की हो—जाओ काँजीहौस ले जाओ ।' सो चाचा भैंस उसी समय कांजीहौस भेज दी गई। मैंने जो यह सुना तो मुझे बड़ा बुरा लगा। मैंने कहा—

'अव्वल तो कांजीहौस भेजने का काम क्या था, जानवर सभी के पास हैं और सभी के कभी कभी खुल जाते हैं और जिस खेत में चाहते हैं घुस जाते हैं हैं। जो सब इसी तरह कांजीहौस भेजने लगें तो काम कैसे चले। कई दफ़े खास उनके जानवर हमारे खेत में चर गये पर हमने चूँ नहीं की, चुपचाप पकड़ कर उनके खूँटे में बांध आये। खैर मैं उसी समय उजागर चाचा के पास पहुँचा। मैंने उनसे बड़ी नम्रता से कहा 'उजागर चाचा, हमारी भैंस आपने कांजीहौस क्यों भिजवा दी?'

परन्तु उजागर चाचा उस समय सातवें आसमान पर थे।—बात क्या कही मानों काटने दौड़े, बोले—भिजवा न दें तो क्या करें, अपना खेत चरवा डालें—और मैं क्या जानूँ किसकी भैंस थी, कुछ तुम्हारा उस पर नाम तो लिखा था ही नहीं। और अब तो मैंने सोच लिया है कि किसी को रियायत न करूँगा, चाहे जो हो, और चाहे जिसका जानवर हो, अपने खेत के पास भी पा जाऊँगा तो कांजीहौस भिजवा दूँगा। लोगों ने नाक में दम कर रक्खा है—घर में बांध कर खिलाया नहीं जाता, रात में खेत चरने को छोड़ देते हैं। अब चराने का मज़ा मिलेगा।

मेरे मुँह से निकला—'चाचा, यह मल्लाही तो ठीक नहीं, यह तो दुनिया जानती है कि भैंस मेरी है-आपको ऐसा नहीं चाहिए. था—आपके भी जानवर हैं और वे भी कभी कभी खुल जाते हैं। बस चाचा मेरा इतना कहना था कि उजागर चाचा जामे के बाहर हो गये, कड़क कर बोले—मेरे जानवर किसी······ (गाली) के खेत में जावें तो उसका जी चाहे सो करे, चाहे कांजीहौस भेजे चाहे क़साई को दे दे और मैं भी अब ऐसा ही करूँगा। वाह, अच्छी धाँधली मचा रक्खी है, खेत का खेत चरावें और ऊपर से उपदेश

देने आवें। कल का लौंडा चला वहां से बड़ा कहीं का लाल भुझक्कड़ बन कर।

इतना सुन कर, चाचा, मुझे भी क्रोध आ गया—तुम जानो हम भी आधा सेर आटा खाते हैं—हमारे शरीर में भी खून है। मैंने कहा—आप इतना जामे से बाहर क्यों हुए जाते हैं। मैं तो चाचा—चाचा कह रहा हूँ और आप सिर ही पर चढ़े बैठते हैं। आखिर आपने समझ क्या रखा है। जब तक चाचा कहता हूँ तभी तक खैर है—जिस दिन सामने खड़ा हो गया उस दिन छठी का दूध याद आ जायगा। और देखूँ आप कैसे मेरे जानवर कांजीहौस भेजते हैं—मेरे जानवर रोज़ खुलेंगे और जहां चाहेंगे चरेंगे-जिसमें हिम्मत हो कांजीहौस भेजे, पर कांजीहौस भेजने के पहले सिर पर लोहे का तवा भी जड़वा ले।

इतना सुनते ही उजागर चाचा बाहर निकल आये और आते ही एक तमांचा मेरे मुँह पर मारा, क्या कहूँ चाचा, मेरी जगह दूसरा होता तो चक्कर खा कर गिर जाता, मेरी भी आँखों तले अंधेरा छा गया। मेरे पास उस समय कोई लाठी डंडा नहीं था—जल्दी में खाली हाथ ही चल दिया था इसलिये मैंने उस समय लड़ना ठीक न समझा। इतना मैंने ज़रूर कहा--चाचा तुमने मुझे बेक़सूर मारा है--इसका बदला मैं जरूर लूँगा—जो न लूँ तो ठाकुर से नहीं चमार से पैदा समझना।

इस पर वह बोले—तू चमार तेरी सात पीढ़ी चमार--तू ठाकुर कबसे हुआ?

मैंने इसका कोई जवाब नहीं दिया, चुपचाप घर चला आया। सो चाचा, अब तो मैं क़सम खा चुका हूँ कि तमांचे का बदला जरूर लूँगा, चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय

इतना सुन कर बसन्तसिंह सर हिला कर बोले—उजागर भाई ने ग़लती की जो ऐसा किया, उन्हें ऐसा नहीं चाहिये था। एक तो भैंस को काँजीहौस भेजना ही बुरा था—जानवर तो खुलते ही रहते हैं और खेत भी चर जाते हैं, पर क्या किया जाय। अभी तीन चार दिन हुए अंगनू अहीर का बैल रात में हमारे खेत में घुस गया। किसी को पता न लगा; वह साला रात भर मजे में छकता रहा। सबेरे लोगों ने देखा और पकड़ लिया। और मुझे ख़बर हुई मैंने जा कर छुड़वा दिया। एक जगह रह कर ऐसी बातें नहीं चाहियें। ख़ैर बेटा, वह गाँव के बड़े बूढ़े हैं उनकी बात का बुरा मत मानो। तुम जानते ही हो वह बड़े-क्रोधी हैं—ज़रा ही में उन्हें क्रोध आता है।

सुन्दरसिंह मूछों पर ताव दे कर बोले—वह क्रोधी हैं तो हम भी बड़े क्रोधी हैं—हमने अपना क्रोध किसी ससुरे के हाथ बेच नहीं खाया है। जिस समय तमांचा मारा था उस समय मैं न जाने क्या समझ कर चुपचाप चला आया नहीं उसी समय छाती पर चढ़ कर खून पी लेता। मगर खैर-अब भी क्या हुआ-चोर जाते रहे कि अन्धियारी।

बसन्तसिंह बोले—नहीं बेटा ऐसी बातें न करो, इसमें बड़ी बदनामी की बात है। वह चाहे तुम्हारे दस तमांचे मारें-तुम्हारी कुछ आबरू नहीं घटेगी—और जो कहीं तुम हाथ चला बैठे तो सब तुम्हीं को थूकेंगे।

सुन्दरसिंह—अब चाहे कोई थूके, चाहे चूमे, अब तो तमांचे का बदला लिया ही जायगा। कसूर होता तो तमाचा क्या जूता मार देते तब भी चूं न करता। एक तो खुद ही ग़लती की, भैंस कांजीहौस भिजवा दी—दूसरे हाथ चला दिया, यह बात क्या मैं भूल थोड़ा ही सकता हूँ।

बसन्तसिंह—खैर बेटा समझाना मेरा काम था-जो तुम्हारा जी चाहे

सो करो। यह कह कर बसन्तसिंह उठ कर चल दिये।

(३)

रात के नौ बज चुके हैं। पूर्णमासी का चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से संसार को आलोकित कर रहा है। उसी समय ठाकुर उजागरसिंह हाथ में एक लट्ठ लिए अपने खेतों की मेंड़ पर घूम रहे हैं। खेत में कुछ मज़दूर पानी काट रहे हैं। उसी समय उजागरसिंह ने पूछा—कितना खेत सिंच गया? एक मज़दूर ने कहा—मालिक, आधा हो गया है आधा और बाक़ी है।

उजागरसिंह 'हूँ' करके चुप हो गये और इधर-उधर टहलने लगे। आध घण्टा इसी प्रकार व्यतीत हुआ। आध घण्टे पश्चात् हठात् एक आदमी उनकी ओर दौड़ता हुआ आया और बोला—चाचा, सुन्दरसिंह अपने खेत में पानी काटे ले रहे हैं। मैंने मना किया पर माने नहीं। आप चल कर कहिये तो चाहे मान जाँय।

यह सुनते ही उजागरसिंह कुछ मुस्कराकर बोले—इस लौण्डे की हिम्मत बहुत बढ़ती जाती है— अच्छा चलो। यह कह कर उजागरसिंह उस आदमी के साथ हो लिये। थोड़ी दूर चल कर सुन्दरसिंह के खेतों के पास पहुँच गये। सुन्दरसिंह खड़ा कह रहा था—काट लो पानी, कुछ परवाह नहीं, जो होगा देखा जायगा।

उजागरसिंह सुन्दरसिंह के सामने पहुंचे और बोले—क्यों सुन्दरसिंह क्या बात है? जब हमारे खेतों में पानी जा रहा है तो तुमने क्यों अपने खेतों में काट लिया?

सुन्दरसिंह तो उजागरसिंह से झगड़ा करने का अवसर ढूँढ़ ही रहा था। अपने खेतों में पानी काट लेने का अभिप्राय यही था कि झगड़ा हो। अतएव

वह बोला—काट लिया तो क्या बुरा किया, दिन भर आपने सींचा अब रात में हम सींचेंगे।

उजागरसिंह—हमारा खेत अधूरा पड़ा है—रात भर में पूरा हो जायगा कल सुबह से तुम सींचना।

सुन्दरसिंह लापरवाही से बोला--यह तो नहीं हो सकता--अब आज रात में हमारा ही खेत सींचा जायगा।

उजागरसिंह--यह तो तुम्हारा अन्याय है।

सुन्दरसिंह--गाँव में न्याय है कहाँ, न्याय तो यहां से उठ गया! अब तो जिसकी लाठी उसकी भैंस।

उजागरसिंह--लाठी में भी हम किसी से कमज़ोर नहीं हैं—पर व्यर्थ झगड़ा क्यों बढ़े--यही विचार है।

सुन्दरसिंह--सो तो हो नहीं सकता। आज रात को तो हमारा ही खेत सिंचेगा।

इतना सुनते ही उजागरसिंह का चेहरा तमतमा उठा-आँखें रक्तवर्ण हो गईं। बोले—'यह तो नहीं होने पायेगा। खेत सिंचेगा तो हमारा नहीं तो दोनों में से एक का भी नहीं सिंचने पायेगा।' इतना कह कर वह आगे बढ़े सुन्दरसिंह—उनका तात्पर्य समझ गया और बोला—चाचा, कुलाबे के पास न जाइयेगा, नहीं तो अच्छा न होगा।

उजागरसिंह ने कहा--जो तुम्हें करना हो सो करो—हम पानी ज़रूर बन्द करेंगे।

इतना सुनते ही सुन्दरसिंह लाठी लेकर बढ़ा। उसे आते देख उजागरसिंह खड़े हो गये। सुन्दरसिंह ने कहा—भलाई इसी में है कि चुपचाप लौट

जाइये ।

उजागरसिंह—नहीं तो क्या करोगे ?

सुन्दरसिंह—करेंगे क्या, आपकी और अपनी जान एक करेंगे ।

उजागरसिंह—अबे लौण्डे, तेरी यह हिम्मत कब से हुई—अभी कुछ दिन घर में बैठ कर दूध-घी खा—तब फिर हमारे सामने आना । तूने समझा होगा कि बुड्ढा आदमी है—धमका लो, सो बेटा, हम ऐसी धमकियों में नहीं आयेंगे ।

सुन्दरसिंह ने कहा—दूध घी तो आपके प्रताप से बहुत खाया और खायँगे—इन बातों से कोई लाभ न होगा । आप चुपचाप लौट जाइये ।

उजागरसिंह—हम तो बिना पानी बन्द किये लौटेंगे नहीं ।

इतना कह कर उजागरसिंह फिर चले । सुन्दरसिंह उनको रोक कर खड़ा हो गया और लाठी उठा कर बोला—'चाचा' आज तमाँचे का बदला निकलेगा । उजागरसिंह कुछ क्षणों तक चुप खड़े उसका मुँह ताकते रहे तत्पश्चात् बोले—कुछ तमाँचे और खाले फिर तमाँचे का बदला लेना—

यह कह कर उन्होंने लाठी फेंक दी और यह कहते हुए आगे बढ़े तुझ लौण्डे के सामने मैं क्या लाठी हाथ में लूँ—कहा मान जा, रास्ता छोड़ दे ।

परन्तु सुन्दरसिंह टस से मस न हुआ । यह देख कर उजागरसिंह आगे बढ़े और उन्होंने सुन्दरसिंह का गला पकड़ कर उसे एक धक्का दिया । सुन्दरसिंह गिरते गिरते संभला और संभलते ही उसने लाठी का वार किया । उजागरसिंह पहले ही से होशियार थे—उन्होंने तुरन्त पैंतरा बदल कर वार को बचाया । सुन्दरसिंह झोंके में मुँह के बल भूमि पर आ रहा पर तुरन्त ही पुनः संभल गया । संभल कर उसने पुनः लाठी उठानी चाही । उसके लाठी उठाने

के पूर्व ही उजागरसिंह ने लपक कर उसकी कलाई पकड़ ली, हाथ मरोड़ कर लाठी छीन ली और तड़ाक से एक तमाँचा उसके मुँह पर मारा। तमाँचा खाते ही सुन्दरसिंह बिलबिला गया। उसने बड़ी चेष्टा की, कलाई छुड़ाने के लिये बड़ा जोर लगाया परन्तु वृद्ध उजागरसिंह के शरीर में न जाने कहाँ का बल आ गया कि उन्होंने कलाई न छोड़ी। सुन्दरसिंह हाँफने लगा। उजागरसिंह ने कहा—क्यों, इसी बल पर लाठी बांधे घूमता है। तूने समझा होगा कि उजागर बुड्ढा है—हमारा क्या कर लेगा। सो बच्चा इस धोखे में न रहना–इस बार तो छोड़े देता हूँ जो आगे हमारे मुँह लगा तो मारते मारते बेदम कर दूँगा।

यह कह कर उजागरसिंह ने सुन्दरसिंह की कलाई छोड़ दी और बोले—खैर, आज रात को तुम्हीं पानी लेलो-पर इतना याद रखना कल दिन में हमारे खेत सिंचेगे, समझे! यह बात याद रखना भूल न जाना।'

इतना कह कर उजागरसिंह अपनी लाठी उठा कर अपने खेतों की ओर लौट पड़े।

(४)

उपरोक्त घटना को एक मास व्यतीत हो गया सुन्दरसिंह का हृदय लज्जा तथा क्षोभ से जला जा रहा था। उसे स्वप्न में भी विश्वास न था कि वह उजागरसिंह से इतनी बुरी तरह पछाड़ खा जायगा। उसे अपने शारीरिक बल पर बड़ा अभिमान तथा भरोसा था। परन्तु उसका वह विश्वास, वह भरोसा सब बालू की भीत की भांति धराशायी हो गया।

अब सुन्दरसिंह को यह चिन्ता हुई कि जिस प्रकार बने उजागरसिंह को नीचा दिखाना चाहिए। लज्जा तथा झेंप मनुष्य को पागल बना देती है—उसे

उचितानुचित का ध्यान नहीं रहता। झेंपा हुआ आदमी अपनी झेंप मिटाने के लिए नीच से नीच कर्म करने के लिए उद्यत हो जाता है। उसका लक्ष्य केवल अपने उस प्रतिद्वन्दी को नीचा दिखाना हो जाता है जो कि उसके झेंपने का कारण होता है। सुन्दरसिंह की भी यही दशा हुई। वह अब उजागरसिंह को हानी पहुँचाने के लिए सब कुछ करने के लिए कटिबद्ध हो गया।

दोपहर का समय था। सुंन्दरसिंह एक वृक्ष के नीचे अपने तीन चार मित्रों को लिये बैठा था। वह कह रहा था—भैय्या सम्पतसिंह अब चाहे जो हो उजागरसिंह को नीचा दिखाना ही पड़ेगा।

सम्पतसिंह बोला भाई टेढ़ी खीर है। उजागर ऐसे वैसे आदमी नहीं हैं। गाँव भर के ज्वानों में तुम्हीं सब से तगड़े हो; जब उन्होंने तुम्हें कुछ नहीं समझा तब दूसरे की क्या हिम्मत है जो उनके सामने ठहर सके।

सुन्दरसिंह—नहीं भैय्या मैं अकेले सामना करने की बात नहीं करता—मैं तो चाहता हूँ कि उन्हें नीचा दिखाऊँ चाहे इसे एक आदमी करे चाहे तीन चार आदमी मिल कर करें।

दूसरा साथी बोला—तीन चार आदमी मिलकर? यह तो कायरपने का काम है।

सुन्दरसिंह—इस समय मेरे सामने नीति शास्त्र तो बखानो नहीं—जो मैं कहता हूँ उसकी युक्ति सोचो। और देखो, जो इस मामले में तुम लोगों ने मेरा साथ न दिया तो जन्म भर के लिए तुम लोगों से दुश्मनी हो जायगी।

तीसरा बोला—यार सुन्दर, यह बात तुम्हारी बेजा है—तुम अपने साथ हमें भी डुबोने की बातें कर रहे हो।

सुन्दरसिंह—इसमें डुबोने की क्या बात है, हमारे दोस्त हो तो हमारा

साथ दो।

सम्पतसिंह—कल तक तो तुम उन्हें चाचा कहते थे और आज उन्हें पीटने की तरकीबें सोच रहे हो—यह कैसी बात है ?

सुन्दरसिंह—जब तक चाचा थे तब तक थे, अब तो वह मेरे शत्रु हैं और मैं उनका शत्रु हूँ। या तो मैं अपनी जान दे दूँगा या उनकी ले लूँगा।

तीसरा—अरे राम राम, ऐसी बात मुंह से न निकालो।

सुन्दरसिंह--भाई साहिब, जैसा मेरा अपमान हुआ वैसा जो तुम्हारा होता तो तुम्हारी भी मेरी ही सी दशा होती। उन्होंने दो दफ़े मुझे बेक़सूर मारा है।

दूसरा—अरे, बड़े हैं-मार दिया तो क्या हुआ—उनके मारने पीटने से कुछ तुम्हारी इज्जत नहीं चली गई।

सुन्दरसिंह—अच्छा अब यह उपदेश अपने पास रक्खो—यह बताओ कि मेरा साथ दोगे या नहीं।

दूसरा—यार हम तो तुम्हारे दोस्त हैं, जैसा कहोगे करेंगे, पर क्यों अपने साथ हमें भी नर्क का भागी बनाते हो।

सुन्दरसिंह—दोस्ती के माने यही हैं कि चाहे अच्छा काम हो चाहे बुरा—दोस्त को हर हाल में साथ देना चाहिए।

सम्पतसिंह—अच्छा भाई, जैसा कहोगे करना पड़ेगा।

सुन्दरसिंह ने अन्य दो दोस्तों की ओर देख कर कहा—और तुम लोग ?

वे दोनों एक स्वर से बोले—हम भी तुम्हारे साथ हैं जो कहोगे करना पड़ेगा।

सुन्दरसिंह—अच्छा तो सुनोः—

यह कह कर सुन्दरसिंह ने धीरे-धीरे उनसे कुछ देर तक बातें कीं। तीनों ने कहा—अच्छा, ऐसा ही होगा।

इस घटना के तीन दिन पश्चात् उजागरसिंह शाम को झुट-पुटे समय पाखाने होकर गाँव की ओर लौट रहे थे-हठात् एक झाड़ी से चार आदमी लाठी लिये हुए निकले और बिना कुछ कहे सुने चारों नें उजागरसिंह पर लाठियाँ बरसानी आरम्भ कीं। उजागरसिंह पहले तो चौंधिया गये—उनकी समझ में न आया कि मामला क्या है, पर जब बराबर लाठियाँ पड़ती रहीं तब उन्होंने भी अपना डण्डा सँभाला और पैंतरा बदल कर वार बचाने लगे। पाँच ही मिनट के भीतर उन्होंने एक व्यक्ति को धराशायी कर दिया। शेष तीन आदमी बराबर वार करते रहे। उजागरसिंह ने तीन मिनटों में एक दूसरे आदमी को भी गिरा दिया। यद्यपि वे लहू से तरबतर हो गये थे, पर उनका हाथ बराबर चल रहा था। अन्त को जब शेष दो आदमियों ने देखा कि बुड्ढे पर पेश पाना कठिन है तो वे भाग खड़े हुए।

उजागरसिंह जब अकेले रह गये तो उन्होंने एक ज़ोर की हाँक लगाई—पास के खेतों में से एक आदमी दौड़ता हुआ आया। उसने आते ही पूछा क्या है काका?

उजागरसिंह ने कहा—अरे ज़रा दियासलाई तो ला—देखूं तो ये कौन हैं।

वह आदमी दौड़ता हुआ गया और दियासलाई लाया। उसने दियासलाई जलाई और भूमि पर पड़े हुए लोगों के पास ले गया। देखते ही वह बोला—अरे यह तो सुन्दरसिंह और सम्पतसिंह हैं। उजागरसिंह का कलेजा धक्क से हुआ, उन्होंने कहा—अरे! यह तो बड़ा अनर्थ हुआ। मैं क्या

जानता था कि ये अपने ही गाँव के लड़के हैं मैंने समझा कोई चोर बदमाश हैं। राम राम, यह तो बड़ा बुरा हुआ। जल्दी आदमी लाओ इन्हें उठा कर ले चलें।

उस आदमी ने एक फूस का गट्ठा सुलगा लिया था, उसकी रोशनी में उसने उजागरसिंह के मुख को देखा-देखते ही वह घबरा कर बोला--उजागर काका, तुम्हारे कपड़े तो रक्त में तर हैं।

उजागर बोले—तू मेरी चिन्ता न कर, जल्दी जाकर आदमियों को ला।

वह आदमी तुरन्त दौड़ा हुआ गया और तीन चार आदमी साथ ले आया। सुन्दरसिंह के पिता को भी सूचना मिल गई, वह भी दौड़ता हुआ आया। सब ने मिल कर दोनों आदमियों को उठाया और ले चले। उजागर-सिंह ने रास्ते में कहा—इन्हें मेरे ही घर ले चलो।

दोनों आदमी उजागरसिंह के घर पहुंचाये गये। यद्यपि उजागरसिंह का सर फट गया था और उससे बराबर रक्तस्राव हो रहा था परन्तु उजागर-सिंह को इसकी कुछ भी चिन्ता न थी, उनका ध्यान सुन्दरसिंह तथा सम्पत-सिंह की ओर था।

घर पहुंच कर उन्होंने पहिले साधारण रूप से अपने घाव को बांध लिया, तत्पश्चात् तुरंत ही दोनों घायलों की सेवा शुश्रूषा में लग गये।

सुन्दरसिंह तथा सम्पतसिंह के खासी चोट आ गई थी। एक सप्ताह तक वे दोनों चारपाई पर पड़े रहे। कभी होश आ जाता था और कभी बेहोश हो जाते थे। एक सप्ताह पश्चात् सुन्दरसिंह को भली भांति ज्ञान हुआ। उसने देखा कि उजागरसिंह उसके सिरहाने बैठे हैं। सुन्दरसिंह को चारों ओर निहारते देख उजागरसिंह बोले—'बेटा सुन्दर कैसा जी है। बेटा, तुमने बड़ा

ग़ज़ब किया था, जो कहीं मेरे हाथों से तुम्हारे गहरी चोट लग जाती तो मैं गाँववालों को और तुम्हारे पिता को कैसे मुँह दिखाता। राम राम, कोई ऐसा काम करता है। आखिर अभी लड़के ही हो बेटा, मैंने तो अपना बच्चा समझ कर तुम्हारे एकाध तमाँचे मार दिये थे, मैं अपने रघुबीर को भी कभी कभी मार बैठता हूँ, क्या करूँ, मेरा स्वभाव ही खराब है कि गुस्सा आता है तो हाथ चल ही जाता है, रघुबीर की उम्र तुमसे कुछ अधिक ही है कम नहीं, पर मैं उसे भी मार देता हूँ, बेटा, मुझसे जो कसूर हुआ हो उसे माफ़ करो, भगवान् जाने गुस्सा आने पर मुझे भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता। बेटा, मेरे हाथों तुम्हारे इतनी चोट लगी है—मेरा कलेजा नुचा जाता है, जिसे गोदियों में खिलाया वह मेरे हाथों घायल हुआ--मैंने उसका रक्त बहाया। यह दुख मुझे जन्म भर रहेगा। यह कहते कहते उजागरसिंह के नेत्रों से आँसू बहने लगे।

सुन्दरसिंह हाथ जोड़ कर बोला--चाचा, मेरा क़सूर माफ़ करो मुझे नहीं मालूम था कि तुम्हें मेरी इतनी मुहब्बत है, मेरी आँखों पर पर्दा पड़ गया था, मैं तुम्हें अपना दुश्मन समझने लगा था। चाचा, अब आज से मैं तुम्हें अपने पिता से अधिक समझूँगा—तमाँचा क्या तुम जूतियाँ भी मारोगे तो चूँ न करूँगा।

यह कह कर सुन्दरसिंह ने उजागरसिंह के चरणों की ओर हाथ बढ़ाया, उजागरसिंह ने उठ कर उसे छाती से लगा लिया।

—स्व० पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

जीजाजी

कनागत बीत रहे थे। अंधेरी रात बादलों से घिर रही थी। रोगिणी ने अर्द्ध-तन्द्रावस्था में पुकारा—"जीजाजी !"

रोगिणी के पिता खाट के पास ही बैठे थे। उन्होंने भरे हुए कण्ठ से दिलासा देते हुए कहा—"बिटिया ! ऐसे अधीर मत हो जरा धीरज धरो। अभी तो गाड़ी का समय है। तार तो ठीक समय पर पहुँच ही गया होगा; वह क्या रुकनेवाले हैं।"

रोगिणी ने मानो कुछ सुना ही नहीं। उसने वैसे ही अधीर और आर्त्तस्वर में पुकारा—"जीजाजी !"

बूढ़ा चुपचाप रोने लगा। द्वार पर शब्द हुआ। अमृतकला दौड़ी हुई आई, और उसने चिल्ला कर कहा—"जीजाजी आ गये !"

रोगिणी ने आँख खोली। उसकी अवस्था सर्वथा आशा-हीन थी। छाती का फोड़ा इधर छाती के पार था, उधर कमर के। सात महीने से करवट भी नहीं ले सकती। दोनों पैर मारे गये थे। एक हाथ रह गया था—दूसरे में हिलने की शक्ति नहीं थी। दस्तों की गिनती न थी। खाट काट दी गई थी। सिर्फ एक सुभीता था, वह सिर को यथेच्छ हिला सकती थी। आँख खोल कर उसने द्वार की ओर सिर फेरा।

एक श्याम-वर्ण के युवक ने घर में प्रवेश किया। उसके हाथ में फलों का रूमाल था, और दूसरे में चमड़े का बेग। दोनों वस्तुओं को वह नीचे न रख

सका, वज्राहत की तरह मुमूर्षु स्त्री के मुख को देखने लगा।

एकाएक उसी उन्मत्त और विकल स्वर में रोगिणी चिल्ला उठी—"जीजाजी!"

बन्दूक़ की गोली की तरह यह क्रन्दन युवक के मस्तक में घुस गया। उसने देखा, रोगिणी के नेत्र में सदा की लज्जा या संकोच नहीं है। उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े। उसने अवरुद्ध कण्ठ से सास की ओर देख कर कहा—"क्या पहिचानती नहीं है?" बूढ़ा फूट कर रो पड़ा, और बुढ़िया पछाड़ खा कर खाट पर झुक गई। उसने कहा—"मेरी बच्ची! ज़रा देख तो ये तेरे पूज्य पतिदेव हैं।"

वैसे ही स्वर में रोगिणी ने फिर नाद किया—"जीजाजी!" इसके बाद उसका सारा शरीर थर-थर काँपने लगा, और दाँत कटकटाने लगे।

युवक ने घबरा कर कहा—"दवा, दवा, दवा लाओ–यह क्या हो रहा है!" कुछ ही क्षण में रोगिणी सचेत सावधान हो गई। युवक खाट के किनारे बैठ कर रोने लगा। धीरे-से, किन्तु बड़े कष्ट से, अपना सूखा लकड़ी-सा हाथ युवक के कन्धे पर रख कर उसने कहा—"रोओ मत जीजाजी।"

इस स्वर में उन्माद न था, वह विकलता भी न थी। एक ठण्डा—बहुत ही ठण्डा—धैर्य था। बूढ़ा और बुढ़िया वहाँ खड़े न रह सके। युवक ने देखा, रोगिणी की पथराई हुई आँखें चिर विदा माँग रही हैं। आँखें चार होते ही उनमें अश्रु-धारा बह चली। युवक के मुँह से शब्द नहीं निकला—वह अनन्त रुदन रो रहा था।

फिर वही हाहाकार गूँज उठा–"जीजाजी!" घर का वातावरण कम्पायमान हो गया। युवक ने अधीर हो कर कहा—"इस तरह मत पुकारो प्यारी!

मैं तो तुम्हारा लुटा हुआ दास हूँ। क्या तुम मुझे पहचानती भी नहीं हो ?"

रोगिणी ने क्षीण स्वर में कहा—"बड़ी मुश्किल से पहचाना है; अब भुलावा मत दो जीजाजी !" इतना कह कर उसने अपनी बर्फ़ के समान ठण्डी और सफ़ेद उँगलियों से युवक का हाथ छू लिया।

उसके हाथ को आदर से अपने हाथ में लेकर युवक ने विकृत स्वर में कहा—"तो क्या धर्म से हम पति-पत्नी नहीं हैं ?"

रोगिणी पर पति की रोती हुई करुणा-पूर्ण बात का कुछ भी असर नहीं पड़ा। न वह रोई, न काँपी। उसने स्थिर स्वर में कहा—"ना।"

"ना ?" युवक ने चकित हो कर पूछा।

उस बार रोगिणी रो उठी। शीघ्र ही उसकी हिचकियाँ बँध गईं। कुछ देर बाद उसने कहा—"हम लोगों का ब्याह कब हुआ था ? वह एक भूल थी, जो अब सुधर रही है। तुमने अमृतकला की जगह मेरा हाथ पकड़ लिया जीजाजी। अब मैं अपने घर जाती हूँ। तुम्हारी जोड़ी सलामत रहे।"

युवक ने अन्त को अधीर हो कर दोनों हाथों से उसका मुँह बन्द कर दिया, और पागल की तरह कहा—"ना, ना, बस करो। यह नहीं सुना जाता। कदापि नहीं। इसके सुनने में भी पाप है।"

रोगिणी ने मुँह पर से हाथ हटा कर कहा—"इतनी शक्ति नहीं है कि तुम्हारे इतने ज़ोर-ज़ुल्म सहूँ। अच्छा तुम्हें क्या ब्याह की बात याद है ?"

युवक ने 'हाय' करके कहा—"वह दिन तो बिना किये ही याद रहता है—कैसा उत्साह और जीवन का वह दिन था ?"

"फिर ? वह सुख, उत्साह और जीवन कहाँ गया ?"

"यहीं, मेरे सामने ही पड़ा है।"

युवक मुँह ढाँप कर रोने लगा।

रोगिणी ने गद्गद स्वर में कहा—"यही भूल थी। तुमने भूल से पराई वस्तु ले ली थी; सो तृप्त हो कर उसे कैसे भोग सकते थे, जीजाजी? मैं सिर्फ़ एक दफे तीन दिन के लिये तुम्हारे घर गई थी। हम लोगों ने परस्पर एक-दूसरे को न देखा, न छुआ। हम दोनों पवित्र हैं।"

"मेरा तुम्हारा इतना ही भोग था।"

"वही तो जीजाजी! सो हमने भोग लिया। अब असली अधिकारी को भोगने दो।"

"असली अधिकारी कौन?"

"अमृतकला।"

"ना यह नहीं होने का।"

"यह अवश्य होने का है। करो, बहस करो, मुझ मरती हुई से करो बहस!" इतना कहने पर वह बदहवास हो गई, उसकी आँखें पथरा गईं।

युवक चुपचाप दोनों हाथों से मुँह ढाँप कर रोने लगा। पीछे से किसी के हाथ का स्पर्श पाकर जो फिर कर देखा तो बुढ़िया सास खड़ी थी। उसने कहा—"आज एक सप्ताह से इसने जीजाजी की धुन बांध रक्खी है। इसी की बात रहे बेटा! अमृतकला को ही पैर धोने दो।"

युवक ने देखा, बुढ़िया के पीछे बूढ़े ससुर भी करुणदृष्टि से यही विनय कर रहे हैं।

युवक ने हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—"ना माँ! मुझसे यह पाप न होगा।"

बूढ़े ने अपनी दाढ़ी हाथ में ले और आगे बढ़ कर युवक के आगे झुक कर

कहा—"मेरी सफ़ेदी की ओर तो देखो ! मुझे अकेला मत छोड़ो—बिटिया की ही बात रक्खो।"

युवक ने बड़े ही दुःख के साथ कहा—"ना, ना, मुझसे यह न होगा।"

रोगिणी ने धीमे और उखड़े हुए स्वर में कहा—"तो जाने दो, मैं भी नहीं मरूँगी। इसी यन्त्रणा में पड़ी-पड़ी सदा सड़ती रहूँगी। और जो कहीं बिना इच्छा के ही मेरा दम निकल गया, तो भी मेरी आत्मा यहीं मँडराती रहेगी। हम सबमें से कोई भी सुखी नहीं रहेगा जीजाजी !"

उसके सूखे और पीले मुख पर आँसू ढुलकने लगे। पहिले हिचकियाँ आईं, पीछे हुचकी आने लगी और उन्हीं हुचकियों के साथ उसकी पसलियाँ चलने लगीं। आँखें बाहर निकल आईं। चेहरे पर मुर्दनी छा गई। अमृतकला 'हाय जीजी !' चिल्ला उठी।

तीनों विमूढ़ हो गये। युवक ने देखा, बूढ़ा और बुढ़िया, दोनों टूटे दिल से उसकी ओर देख रहे हैं। उसने लज्जा से मुँह ढाँप कर कहा—"यह जो कहेगी, वही मैं करूँगा—पर, हाय ! ईश्वर !" कहता हुआ युवक धरती पर बैठ गया।

रोगिणी ने धीरे-धीरे आँखें खोल कर जल मांगा। फिर उसने कहा—"कहाँ है अमृत, उसे मेरे पास लाओ।"

घर-भर छान डाला गया। अमृतकला गई कहाँ ? वह छत पर बूँदों से भीगती हुई, पड़ी, मुँह छिपाये सिसक-सिसक कर रो रही थी। बाप को देखते ही वह धाड़ मार कर रो उठी।

वृद्ध ने बड़े दुलार से उसे गोद में उठा लिया, और रोगिणी के पास लाया। वह रो रही थी, सिकुड़ रही थी, और मरी-सी जाती थी। सब ने देखा

इतने ही समय में वह बालिका पीली पड़ गई है। कमरे में घुसते ही उसने कहा—"ना, ना, जीजी ! मैं मर जाऊँगी, ना, ना-ना।"

यों कह कर अपने को छुड़ा कर वह भाग जाने के लिए छटपटाने और हाथ-पैर मारने लगी।

माँ ने कहा—"बेटी, जीजी की ओर तो देख। फिर वह कहाँ देखने को मिलेगी ? कब कुछ कहने आवेगी ?"

रोगिणी ने सतेज स्वर में कहा—"बहन ! इधर आ।" इतना कह कर बालिका का हाथ पकड़ लिया। एक नवीन बल जैसे उसके शरीर में आ गया। बालिका ने रोते-रोते बदहवास हो कर कहा—"मैं नहीं, मैं नहीं, जीजी !"

रोगिणी ने उधर न देख कर युवक से कहा—"यहाँ आओ जीजाजी !" पत्थर की मूर्ति की तरह युवक वहीं खड़ा रहा। उसके सारे शरीर से पसीना बह चला। एक बार उसने कातर दृष्टि से स्त्री की ओर देखा। उस समय रोगिणी की दृष्टि निस्पन्द धारा में असंख्य अनुनय-विनय बरसा रही थी। वह कैसी विनय थी, जो उठती जवानी की सब कामनाओं के अन्तिम छोर से प्रारंभ होती थी। वह कैसा कटाक्ष था जिसमें निराशा के सूखे बादलों के बीच केवल एक अनुनय की कालिमा थी। युवक न देख सका ! वह वध-स्थान पर बकरे की तरह रोगिणी के पास जा खड़ा हुआ। रोगिणी चन्द्रकला ने झट अमृतकला का हाथ उसके हाथ में दे कर कहा—"तुम दोनों आदमी सुख से रहना।"

इसके बाद वह थकावट से शिथिल हो गई; किन्तु क्षण-भर के बाद हीं उसके मुख पर मुसकराहट आई। उसने उत्साह से पुकारा–जीजाजी ?"

इस बार इस ध्वनि में न वह उन्माद था, न हाहाकार। उस मध्यरात्रि

में वह मानों विहाग रागिनी का एक स्वर था। पर यह स्त्री-हृदय का अंतिम उकास था। उस हर्ष के उद्वेग में एकाएक उसके हृदय का स्पन्दन बन्द हों गया। मुसकराने वे जो दांत निकले थे, को निकले ही रह गये। मस्तानी रागिनी का जो स्वर था, वह बीच ही में टूट गया। पक्षी उड़ गया, 'पींजरा पड़ा रह गया।

—चतुरसेन शास्त्री

बाहुबली

बहुत पहले की बात कहते हैं। तब तो युगों का संधि-काल था। भोग-युग के अस्त में से कर्म-युग फूट रहा था। भोग-काल में जीवन-मात्र भोग था। पाप-पुण्य की रेखा का उदय न हुआ था। कुछ निषिद्ध न था, न विधेय। अतः पाप असंभव था, पुण्य अनावश्यक। जीवन बस रहना था। मनुष्य इतर प्रकृति के प्रति अपने आप में स्वत्व का अनुभव नहीं करने लगा था और प्रकृति भी उसके प्रति पूर्ण वदान्य थी। वृक्ष कल्पवृक्ष थे। पुरुष तन ढाँकने को बल्कल उनसे पा लेता, पेट भरने को फल। उसकी हर बात प्रकृति ओढ़ लेती। विवाह न था और परस्पर सम्बन्धों में नातों का आरोप न हुआ था। स्त्री, माता, बहन, पत्नी, पुत्री न थीं; वह मात्र मादा थी। और पुरुष नर। अनेक थलचर प्राणियों में मनुष्य भी एक था और उन्हीं की भाँति जीता था।

उस युग के तिरोभाव में से नवीन युग का आविर्भाव हो रहा था। प्रकृति अपने दाक्षिण्य में मानों कृपण होती जाती थी। उस समय विवाह ढूँढ़ा गया। परिवार बनने लगे, और परिवारों से समाज। नियम-क़ानून भी उठे। 'चाहिए' का प्रादुर्भाव हुआ और मनुष्य को ज्ञात हुआ कि जीना रहना नहीं है, जीना करना है। भोग से अधिक जीवन कर्म है और प्रकृति को ज्यों का त्यों लेकर बैठने से नहीं चलेगा। कुछ उस पर संशोधन, परिवर्धन, कुछ उस पर अपनी इच्छा का आरोप भी आवश्यक है। बीज उगाना होगा, कपड़े बनाने होंगे, जीवन-संचालन के लिए नियम स्थिर करने होंगे और जीवन-

संवृद्धि के निमित्त उपादानों का भी निर्माण और संग्रह कर लेना होगा। अकेला व्यक्ति अपूर्ण है, अक्षम है, असत्य है। सहयोग स्थापित करके परिवार, नगर, समाज बनाकर पूर्णता, क्षमता और सत्यता को पाना होगा।

ठीक जब की बात कहते हैं तब व्यक्ति व्यष्टि-सत्ता से समष्टि-सिद्धि की ओर बढ़ चला था। राजा जैसी वस्तु की आवश्यकता हो चली थी। पर राजा जो राजत्व की संस्था पर न खड़ा हो, प्रजा की मान्यता पर खड़ा हो। यह तो पीछे से हुआ कि राजत्व संस्था बनी और शिक्षा और न्याय, विभाग के रूप में, शासन से पृथक् हुए। नगर बन चले थे और जीवन-यापन नितान्त स्वाभाविक कर्म न रह गया था। उसके लिए उद्यम की आवश्यकता थी।

२

इस भाँति प्रथम राज्य बना और प्रथम राजा हुए श्री आदिनाथ। उनके दो पुत्र थे, दो पुत्रियाँ। पुत्र भरत और बाहुबली; पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुन्दरी।

अवस्था के चतुर्थ खण्ड में ज्येष्ठ पुत्र को बुला कर श्री आदिनाथ ने कहा—"पुत्र, अब तुम यह पद लो। मुझे अब दीक्षा लेनी चाहिए।"

भरत ने कहा—"महाराज"

आदिनाथ ने कहा—"तुम को पहला चक्रवर्ती होना है। इस राज्य से बाहर भी बहुत से प्रान्त हैं, जिनको व्यवस्थित शासन तुम्हें देना है। मैं तो लोगों के मान लेने से उनका मुखिया हो गया था। उनको मुझे राजा कहने में सुख मिला। मैंने कहा, अच्छा। लेकिन तुमको साम्राज्य बनाना है। अपने लिए नहीं, लोगों में एकत्रता लाने के लिए। तुमको विजय-प्रसार का कर्तव्य भी करना होगा।"

भरत ने कहा—"महाराज, आप दीक्षा क्यों लें विजयध्वज फहरा

न आऊँ और अपने को समर्थ न समझ लूँ तब तक आप अपना आशीर्वाद मुझ पर से न उठावें।"

आदिनाथ ने कहा—"पुत्र, अब समय आता जाता है कि राजा शासक अधिक हो, प्रजा का हमजोली उतना न हो। राजैश्वर्य से युक्त राजा को देख कर प्रजा समझती है कि उसने कुछ पाया है। तब तक उसका चित्त तुष्ट नहीं होता। मैं तो प्रजा के निम्नातिनिम्न जन से अपना हमजोलीपन नहीं तज सकता। किन्तु तुम्हारे लिए यह अनिवार्य नहीं है। तुम राजपुत्र हो। मैं तो साधारण पिता का पुत्र हूँ और जिस पद से शासन की आशा है, उसके सर्वथा अयोग्य बन जाना चाहता हूँ। मुझे लोगों के दुःख में जाना चाहिए और मुझे उस मार्ग में से चल कर अपना कैवल्य पा लेना चाहिए।"

भरत ने निरुत्तर हो कर सिर झुका लिया।

अगले दिन आदिनाथ ने दीक्षा ले ली। समस्त वस्त्राभरण और नगर त्याग कर वे निर्ग्रन्थ विहार कर गये। और भरत' चुप मन, जय-यात्रा पर चल दिये।

पृथिवी के छहों खण्डों पर विजय स्थापित कर और बहुभाँति के मणि-मुक्ता, हय-गज और कन्या-सुन्दरियों की भेंट से युक्त भरत धूमधाम के साथ नगर को लौट कर आये।

किन्तु जब भरत नगर में प्रवेश करने लगे तब विचित्र घटना हुई। चक्रवर्ती का शासन-चक्रनगर के भीतर प्रविष्ट नहीं होता था। प्रत्येक द्वार से नगर में प्रवेश करने के यत्न किये गये, किन्तु शासन-चक्र ने साथ न दिया। इस पर लोगों को बहुत अचरज हुआ। राजगुरु की शरण में जा कर इसके कारण के विषय में उन्होंने जिज्ञासा की। गुरु ने बताया कि इस नगर में एक

व्यक्ति है जो अविजित है। इस पर जब तक विजय न पा ली जाय तब तक चक्रवर्तित्व अखण्ड नहीं होता। और उस समय तक यह शासन-चक्र नगर में प्रवेश न करेगा। राजगुरु ने यह भी बताया कि अभी तक जिन पर किसी ने विजय नहीं पाई है, ऐसे व्यक्ति राजकुमार बाहुबली हैं।

भरत ने पूछा—गुरुदेव, तब क्या बाहुबली से मुझे युद्ध करना होगा ?

राजगुरु ने कहा—'राजन्, तब तक चक्रवर्तित्व असिद्ध है।"

भरतने कहा—"किन्तु मैं चक्रवर्ती नहीं होना चाहता।"

राजगुरु ने कहा—"राजर्षि, यह आपकी व्यक्तिगत इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न नहीं है। यश राजकारण का प्रश्न है।"

भरत ने कहा—"गुरुदेव' क्या भाई से भाई को लड़ना होगा ?"

गुरुदेव ने कहा—"राजन्, राजकारण गहन है। राजकारण-धर्मी का कौन भाई है, कौन भाई नहीं है ?"

भरत नतमस्तक हुए।

× × ×

पांच युद्धों-द्वारा शक्ति-परीक्षण का निश्चय हुआ। दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध आदि और अन्त में मल्लयुद्ध।

आरम्भ के चारों युद्धों में बिना प्रयास बाहुबली ही जयी हुए बाहुबली इस विजय से विशेष उल्लसित नहीं दिखाई देते थे, न भरत विशेष उदास। मल्लयुद्ध अंतिम युद्ध था और उसके समय प्रजा की उत्सुकता इस भाई-भाई के द्वेष-हीन युद्ध में बहुत बढ़ गई थी।

मल्लयुद्ध में कुछ देर के बाद बाहुबली ने भरत को दोनों हाथों पर ऊपर उठा लिया। इस समय दर्शकों के प्राण कण्ठ में आ बसे थे। वे प्रतिपल

आशंका करने लगे कि चक्रवर्ती भरत अब धरती पर चित आ पड़ते हैं। किन्तु बाहुबली ने धीमे धीमे अपने हाथों को नीचे किया और भरत पृथिवी पर सावधान खड़े दिखाई दिये। तदनन्तर नतशिर हो कर बाहुबली ने दोनों हाथों से अपने बड़े भाई के चरण छुए।

भरत ने भी बाहुबली को अपनी छाती से लगा लिया, कहा—"बाहुबली, विजयी होओ। मुझे तुम पर गर्व है और मैं तुम्हारी विजय पर हर्षित हूँ। तुम सामर्थ्यशाली बनो।"

बाहुबली ने कहा—"यह आप क्या कहते हैं? आप ज्येष्ठ हैं, योग्य हैं और मैं एक क्षण के लिए भी राज्य नहीं चाहता।"

भरत ने कहा—"भाई बाहुबली, वह तुम्हारा है। तुम उसके विजेता हो, उसके पात्र हो। और मैं अपना हृदय दिखा सकूँ तो तुम जानो, मैं कितना प्रसन्न हूँ। तुम राजा बनो, मुझे अमात्य बनाओ, सेनापति बनाओ, अथवा जो चाहो सेवा लो।"

बाहुबली ने हाथ जोड़ कर कहा—"भाई, मुझे राज्य की इच्छा नहीं है। इस विषय में आप राज्य-पालन का कर्त्तव्य मुझ पर न डालें। मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। मुझे राज्य आदि नहीं चाहिए।"

भरत ने बहुत कहा। परन्तु बाहुबली दीक्षा लेकर वन की ओर चले गये। भरत चुपचाप राज्य-रक्षा और राजत्व-पालन में लग गये।

३

बाहुबली ने घोर तपश्चरण किया—अति दुर्द्धर्ष, अति कठोर, अति निर्मम। वर्षों वे एक पैर से खड़े रहे। महीनों निराहार यापन किये। सुदीर्घ काल तक अखण्ड मौन साधे रक्खा। बरसों बाहर की ओर आँख खोल कर देखा तक

नहीं ।

उनकी इस तपस्या की कीर्ति दिग्दिगंत में फैल गई । देश देश से लोग उनके दर्शन को आने लगे । भक्तों की संख्या न थी । उनकी महिमा और पूजा का परिमाण न था ।

किन्तु बाहुबली भक्तों और उनकी पुजा से विमुख हो कर घोर से घोरतर निर्जन दुष्प्राप्य एतान्त में चले जाते थे। एक स्थान पर एक बार अडिग, एकस्थ, एकाकी इतने काल तक खडे रहे कि उनके सहारे वल्मीक जम गये, बेलें उठ कर शरीर को लपटने लगीं । उन वल्मीकों में कीड़े-मकोड़ों ने घर बना लिये ।

इस कामदेवोपम सर्वाङ्ग-सुन्दर बलिष्ठ पुरुष ने निदारुण कायक्लेश में वर्ष के वर्ष बिता डाले । लोग देख कर हा हा करते थे और निस्तब्ध रह जाते थे । उसकी स्पृहणीय काया मिट्टी बनी जा रही थी । स्त्रियाँ उस निमीलित-नेत्र, मग्न-मौन, शिला की भाँति खड़े हुए पुरुष-पुंगव के चरणों को धो-धो कर वह पानी आँखों लगाती थीं । उसके चरणों के पास की मिट्टी औषधि समझी जाती थी पर वह सब ओर से विलग, अनपेक्ष, बन्द-आँख, बन्द-मुख, मलिन देह, कृश-गात, तपस्या में लीन था ।

यह था, पर कैवल्य उसे नहीं प्राप्त हुआ, नहीं हुआ, नहीं हुआ । ज्ञानी लोग इस पर किंकर्त्तव्य विमूढ़ थे ।

× × ×

जीवन्मुक्त भगवान् आदिनाथ से लोगों ने पूछा—"भगवान्, दीर्घ काल से कुमार बाहुबली अतिशय कठोर तपश्चर्या कर रहे हैं । आपको ज्ञात तो है ?"

भगवान् बोले—"हाँ ज्ञात है ।"

"उससे हमारा हृदय काँपता है। आप उन्हें इससे विरक्त करेंगे?"

भगवान् ने कहा—"नहीं। एकनिष्ठा के साथ जो किया जाता है उससे किसीका अपकार नहीं होता।"

लोगों ने पूछा--"किन्तु भगवान्, कुमार बाहुबली को अब तक कैवल्य-सिद्धि क्यों नहीं हो सकी?"

भगवान् ने कहा--"यह तुम पीछे जानोगे।"

४

भरत राज्यशासन चला रहे थे। प्रथम चक्रवर्ती भरत के ऐश्वर्य का पार न था। मणि-माणिक-मुक्ता की दीप्ति से उनका परिच्छद जगमग रहता था। उनके नाम का आतङ्क दिग्दिगन्त में छाया था। सब प्रकार के सुख-विलास और आमोद-प्रमोद के साधन उनके संकेत पर प्रस्तुत थे। और वे अपने अखण्ड निष्कण्टक चक्रवर्तित्व का उपभोग कर रहे थे।

इसको भी वर्ष के वर्ष हो गये।

एक दिन भगवान् आदिनाथ के पास पहुँच कर भरत ने कहा—"भगवन्, भाई बाहुबली को यह अधिकार मिला कि वह मुझको छोड़ कर और राज्य को छोड़ कर स्वाधीन रहें और सत्य को पाएँ। जो मेरे अधिकार में नहीं आता था, जो बाहुबली का हो गया था, उस राज्य को लेने को मैं रह गया। मेरे लिए अस्वीकार करने को तनिक भी अवकाश नहीं छोड़ गया। मुझे शिकायत नहीं है। लेकिन मैं आप से पूछता हूँ, क्या मैं अब दीक्षा नहीं ले सकता?"

भगवान् ने कहा—"ले सकते हो। अगर सत्य की उपलब्धि राजत्व के द्वारा तुम्हारे निकट अगम्य बन गई है, तो तुम उसे अवश्य तज सकते हो। और मैं कह सकता हूँ--अगम्य बन जाना भी चाहिए। तुम पचास वर्ष से तो

ऊपर के हुए न ?"

भरत संतुष्टचित्त महलों को लौट आये। और दो दिन बाद घोषणा हो गई कि चक्रवर्ती अब दीक्षा लेंगे।

नगरवासियों में विकलता छा गई। साम्राज्य के प्रान्त-प्रान्त से विरोध में अनुनय-प्रार्थनाएँ आईं। किन्तु भरत ने एक प्रतिनिधि-सभा को अपना उत्तराधिकार देकर दीक्षा ले ली।

और राज्याभरण उतारते उतारते मुहूर्त्त के अन्तर में उन्हें निर्मल कैवल्य की उपलब्धि हो गई।

× × ×

लोगों ने क्लिष्ट भाव से भगवान् आदिनाथ की शरण में जा कर पूछा—"भगवान्, यह क्या बात है ? कुमार बाहुबली ने कितना घोर कायोत्सर्ग झेला, कैसा दुर्द्धर्ष तपश्चरण किया, आरम्भ से उन्होंने सब सुखों का विसर्जन किया, किन्तु उनको कैवल्य प्राप्त नहीं हुआ। और चक्रवर्ती भरत ने जीवन के अधिक भाग में ऐश्वर्य ही भोगा, प्राचुर्य ही देखा, विलास ही पाया। उनको राजचिह्न उतारते उतारते परम ज्ञान की प्राप्ति हो गई ! भगवान्, बताइए, यह कैसे हुआ ? हमारा चित्त भ्रान्त है।"

भगवान् ने सदय भाव से कहा—"बाहुबली अविजित है। यह वह बेचारा नहीं भूल सका है।"

लोगों को अनाश्वस्त पाकर खिन्न स्मित के साथ भगवान् ने फिर कहा—"बाहुबली के मन में से एक फाँस नहीं निकली है। वही एक शल्य उसकी मुक्ति में काँटा है। उसके चित्त में यह खटक बनी हुई है कि जिस भूमि पर वह खड़ा है वह भरत के राज्यान्तर्गत है।"

× × ×

बाहुबली के कानों में जब यह बात पहुँची, मन का काँटा एक-दम निकल गया। जैसे एक साथ ही वे स्वच्छ हो गये आँखें खुल गईं, मौन-मुख मुस्करा उठा। उस मुस्कराहट में मन की अवशिष्ट ग्रन्थि खुल कर बिखर गई और मन मुकुलित हो गया।

चहुँ ओर वन में उस समय असंख्य भक्त नर-नारियों का मेला-सा लगा था। उन सब को अब उन्होंने अस्वीकार नहीं किया, उनका आवाहन किया। अपने आराध्य की यह प्रसन्न-वदन-मुद्रा देख कर लोगों के हर्ष का पारावार न था। बाहुबली ने अपने को उनके निकट हर तरह से सुगम बना लिया। कहा—"भाइयो, तुमने इस बाहुबली को आराध्य माना। उसकी आराध्यता समाप्त होती है। तपस्या बंद होती है। तुमने शायद मेरे काय-क्लेश की पूजा की है। अब वह तुम मुझमें नहीं पाओगे। इस लिए मुझे आशा है कि तुम मुझे पूजा देना छोड़ दोगे। और यदि मेरी अप्राप्यता का तुम आदर करते थे, तो वह भी नहीं पाओगे। मैं सबके प्रति सदा सुप्राप्त रहने की स्थिति में ही अब रहूँगा।"

बाहुबली ने निर्मल कैवल्य पाया था। ग्रन्थियाँ सब खुल गई थीं। अब उन्हें किसकी ओर से बन्द रहने की आवश्यकता थी? वे चहुँ ओर खुले, सबके प्रति सुगम रहने लगे।

यह देख धीरे धीरे भक्तों की भीड़ उजड़ने लगी और परम योगी बाहुबली की शरण में अब शान्ति के लिए विरल ज्ञानी और जिज्ञासु लोग ही आते थे।

—श्री जैनेन्द्रकुमार

मुण्डमाल

आज उदयपुर के चौक में बड़ी चहल-पहल है। नवयुवकों में नवीन उत्साह उमड़ उठा है। मालूम होता है कि किसी ने यहाँ के कुओं में उमंग की भंग घोल दी है बहादुरों की मूछों में ऐंठ भरी हुई है। आँखों में ललाई छा गयी है। सब की पगड़ी पर देशानुराग की कलगी लगी हुई है। हर तरफ से वीरता की ललकार सुन पड़ती है। बाँके लड़ाके वीरों के कलेजे रणभेरी को सुन कर चौगुने होते जा रहे हैं। नगाड़े से तो कान के पर्दे फट रहे हैं। उदयपुर की धरती धौंसों की धुधुकार से डगमग कर रही है। रण-रोष से भरे हुए घोड़े डंके की चोट पर उड़ रहे हैं। मतवाले हाथी हर ओर से काले मेघ की तरह घुमड़ते चले आते हैं। घण्टों की आवाज से समूचा नगर गूँज रहा है। शस्त्रोचित झनकार और शङ्खों के निनाद से दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित हो रही हैं। बड़े अभिमान से विजय-पताका राजपूतों की कीर्ति लता-सी फहरा रही है। स्वच्छ आकाश के दर्पण में अपने मनोहर मुखड़े निहारने वाली महलों की ऊँची-ऊँची अटारियों पर चारों ओर सुन्दरी-सुहागिनियाँ और कन्याएँ भर-भर अञ्चल फूल लिये खड़ी हैं। सूर्य चमकीली किरणों की उज्ज्वल धारा से छिपे हुए आकाश में घूमने वाले कलश, महलों के मुँडेरों पर मुस्करा रहे हैं। बन्दीवृन्द विशद विरुदावली बखानने में व्यस्त हैं।

महाराणा राजसिंह के समर्थ सरदार चूड़ावतजी आज औरङ्गजेब का दर्प दलन करने और उसके अन्धाधुन्ध अन्धेर का उचित उत्तर देने जाने वाले हैं।

यद्यपि उनकी अवस्था अभी १८ वर्ष से अधिक नहीं है तथापि जङ्गी जोश के मारे वे इतने फूले हैं कि कवच में नहीं अटते। उनके हृदय में सामरिक उत्तेजना की लहर लहरा रही है। घोड़े पर सवार होने के लिए वे ज्यों ही हाथ में लगाम थाम कर उचकना चाहते हैं, त्यों ही अनायास उनकी दृष्टि सामने वाले महल की झँझरीदार खिड़की पर, जहाँ उनकी नवीन पत्नी खड़ी है, जा पड़ती है।

हाड़ा वंश की सुलक्षणा, सुशीला और सुन्दरी सुकुमारी कन्या से आपका व्याह हुए दो चार दिनों से अधिक समय नहीं हुआ होगा। अभी रानी के हाथ का कङ्गन हाथ की शोभा बढ़ा रहा है। अभी कजरारी आँखें अपने ही रंग में रँगी हुई हैं। पीत पुनीत चुनरी भी अभी धूमिल नहीं होने पायी है। फूलों की सेज को छोड़ कर और कहीं गहनों की झनकार भी नहीं सुन पड़ी है। अभी पायल की रुन-झुन ने महल के एक कोने में ही बीन बजायी है। अभी कमल सरीखे कोमल हाथों ने पूजनीय चरणों पर चन्दन ही भर चढ़ाया है। अभी संकोच के सुनहरे सीकड़ में बँधे हुए नेत्र लाज ही के लोभ में पड़े हुए हैं। अभी चाँद बादल ही के अन्दर छिपा हुआ था, किन्तु नहीं, आज तो उदयपुर की उदित-विदित शोभा देखने के लिए घन-पटल में से अभी अभी वह प्रकट हुआ है।

चूड़ावतजी हाथ में लगाम लिये ही बादल के जाल से निकले हुए उस पूर्णचन्द्र पर टकटकी लगाये खड़े हैं। जालीदार खिड़की से छन-छन कर आनेवाली चाँद की चटकीली चाँदनी ने चूड़ावत चकोर को आपे से बाहर कर दिया है। घोड़े की लगाम हाथ में है। मन की लगाम खिड़की में है। नये प्रेम-पाश का नवाकर्षण प्रतिज्ञा पालन के पुराने बन्धन को ढीला कर रहा है।

चूड़ावतजी का चित्त चञ्चल हो उठा। वे चटपट चन्द्रभवन की ओर चल पड़े। वे यद्यपि चिन्ता में चूर हैं, फिर भी मन में चन्द्रदर्शन की चोखी चाव लग रही है। वे संगमरमरी सीढ़ियों के सहारे चन्द्रभवन पर चढ़ चुके; पर जीभ का जकड़ जाना जी को जला रहा है।

हृदयहारिणी हाड़ी रानी भी हिम्मत की हद करके, हल्की आवाज से "प्राणनाथ, मन मलीन क्यों है? मुखारविन्द मुरझाया क्यों है?" न तन में तेज ही देखती हूँ, न शरीर में कान्ति ही! ऐसा क्यों? भला उत्साह की जगह उद्वेग का क्या काम? उमङ्ग में उदासीनता कहाँ से चू पड़ी? क्या कुछ शोक-संवाद सुना है! जब सभी सामन्त-सूरमा संग्राम के लिए सज-धज कर आप ही की आज्ञा की आशा में अँटके हुए हैं, तब क्या कारण है कि आप व्यर्थ व्याकुल हो उठे हैं? उदयपुर के बाजे-गाजे के तुमुल शब्द से दिग्दिगन्त डोल रहा है। वीरों के हुँकार से कायरों के कलेजे में भी लड़ने भिड़ने की लालसा जग जाती है। फिर आप तो क्षात्र-तेज से भरे हुए क्षत्रिय हैं। प्राणनाथ, शूरों को शिथिलता नहीं शोभती। क्षत्रिय का छोटा-मोटा छोकरा भी क्षण भर में शत्रुओं को काटकूट कुट्टी कर देता है। परन्तु आप प्रसिद्ध पराक्रमी हो कर क्यों पस्त पड़ गये?"

चूड़ावतजी चन्द्रमा में चपला की सी चमक-दमक देख, चकित हो कर बोले, "प्राणप्यारी, रूपनगर के राठौड़ वंश की राजकुमारी को दिल्ली का बादशाह बलात्कार से ब्याहने आ रहा है। इसके पहले ही वह राजकन्या हमारे माननीय राणा बहादुर को वर चुकी है। कल पौ फटते ही राणाजी रूपनगर की राह लेंगे। हम बीच में ही बादशाह की राह रोकने के लिए

रणयात्रा कर रहे हैं। सूर सामन्तों की सैकड़ों सजीली सेनाएँ साथ में हैं सही, परन्तु मैं लड़ाई से अपने लौटने की आशा नहीं देख रहा हूँ। फिर कभी भर नजर तुम्हारे चन्द्र-वदन को देख पाने की आशा नहीं है। इस बार घनघोर युद्ध छिड़ेगा। हम लोग मन मार कर जी जान से लड़ेंगे। हिम्मत तो हज़ारगुनी है। मगर मुगलों की मुठभेड़ में महज मुट्ठी भर मेवाड़ी वीर क्या कर सकेंगे! तो भी हमारे ढलैत, कमनैत और बानैत ढाड़स बाँध कर डट जाएँगे। हम सत्य की रक्षा के लिए पुर्जे-पुर्जे कट जायँगे, प्राणेश्वरी! किन्तु हमको तुम्हारी ही चिन्ता बेढब सता रही है। अभी चार ही दिन हुए हैं कि तुम सी सुहागिनी दुलहिन हमारे हृदय में उजेला करने आयी है। अभी किसी दिन तुम्हें इस तुच्छ संसार की क्षणिक छाया में विश्राम करने का भी अवसर नहीं मिला है। किस्मत की करामात है। एक ही गोटी में सारा खेल मात है। किसे मालूम था कि एक तुम सी अनुरूपा कोमलांगी के भाग्य में ऐसा भयंकर लेख होगा। अचानक रंग में भंग होने की आशा कभी सपने में भी न थी। किन्तु ऐसे ही अवसरों पर हम क्षत्रियों की परीक्षा हुआ करती है। संसार के सारे सुख की तो बात ही क्या, प्राणों की भी आहुति दे कर क्षत्रियों को अपने कर्त्तव्य का पालन करना पड़ता है।"

हाड़ी रानी हृदय पर हाथ रख कर बोली, "प्राणनाथ, सत्य और न्याय की रक्षा के लिए लड़ने जाने के समय सहज सुलभ सांसारिक सुखों की बुरी वासना के वश होना आपके समान प्रतापी क्षत्रिय-कुमार का काम नहीं है। आप आपात मनोहर सुख के केन्द्र में फँस कर अपना जातीय कर्तव्य मत भूलिए। सब प्रकार की वासनाओं और व्यसनों से विरक्त हो कर इस समय केवल वीरत्व धारण कीजिए। मेरा मोह छोड़ दीजिए। भारत की महिलाएँ

स्वार्थ के लिए सत्य का संहार करना नहीं चाहतीं। आर्यमहिलाओं के लिए समस्त संसार की सारी सम्पत्ति से बढ़ कर सतीत्व ही अमूल्य धन है। जिस दिन मेरी तुच्छ सांसारिक सुखों की भोग लालसा के कारण मेरी एक प्यारी बहन का सतीत्व रत्न लुट जायगा उसी दिन मेरा जातीय गौरव अरवली-शिखर के ऊँचे मस्तक से गिर कर चकनाचूर हो जायगा। यदि नव-विवाहिता उर्मिला देवी ने वीर शिरोमणि लक्ष्मण को सांसारिक सुखोपभोग के लिए कर्तव्य-पालन से विमुख कर दिया होता तो क्या कभी लखनलाल को अक्षय यश लूटने का अवसर मिलता? वीर बधूटी उत्तरादेवी ने यदि अभिमन्यु को भोग विलास के भयंकर बन्धन में जकड़ दिया होता तो क्या वे वीर-दुर्लभ गति को पा कर भारतीय क्षत्रिय-नन्दन में अग्रगण्य होते? मैं समझती हूँ यदि तारा की बात मान कर बालि भी घर के कोने में मुँह छिपा कर डरपोक-जैसा छिपा हुआ रह गया होता तो उसे वैसी पवित्र मृत्यु कदापि नहीं नसीब हुई होती। सती शिरोमणि सीतादेवी की सतीत्व-रक्षा के लिए जरा-जर्जर जटायु ने अपनी जान तक गँवायी जरूर, लेकिन उसने जो कीर्ति कमाई और बधाई पाई सो आज तक किसी कवि की कल्पना में भी नहीं समाई। वीरों का यह रक्त-मांस का शरीर अमर नहीं होता, बल्कि उनका उज्ज्वल यशोरूपी शरीर ही अमर होता है। विजय कीर्ति ही उनकी अभीष्टदायिनी कल्पलतिका है। दुष्ट शत्रु का रक्त ही उनके लिए शुद्ध गंगाजल से भी बढ़ कर है। सतीत्व के अस्तित्व के लिए रणभूमि में ब्रजमण्डल की सी होली मचानेवाली खड्गदेवी ही उनकी सच्ची सहगामिनी है। आप सच्चे राजपूत वीर हैं, इस लिए सोत्साह जाइये और जा कर एकाग्र मन से अपना कर्तव्य पालन कीजिए। मैं भी यदि सच्ची राजपूत-कन्या हूँगी तो शीघ्र ही आप से स्वर्ग में आ मिलूँगी। अब विशेष

विलम्ब करने का समय नहीं है।

चूड़ावतजी का चित्त हाड़ी रानी के हृदय रूपी हीरे को परख कर प्रफुल्लित हो उठा। प्रसन्न मन से चूड़ावतजी ने रानी को बार बार गले लगाया। मानों वे उच्च भावों से भरे हुए हाड़ी के हृदय पारस के स्पर्श से अपना लौह हृदय सुवर्णमय बना रहे हों। सचमुच ऐसे ही हृदय के आलिंगन से मिट्टी की काया भी कंचन की हो जाती है। चूड़ावतजी आप से आप कह उठे, "धन्य देवि! तुम्हारे विराजने के लिए वस्तुतः हमारे हृदय में बहुत ही ऊँचा सिंहासन है। अच्छा, अब हम मर कर अमर होने जाते हैं। देखना प्यारी, कहीं ऐसा न हो......(कंठ गद्‌गद हो गया)

रानी ने फिर उन्हें आलिंगन कर के कहा, "प्राणप्यारे, इतना अवश्य याद रखिएगा कि छोटा बच्चा चाहे आसमान छूए, सीपी में सम्भवतः समुद्र समा जाय, हिमालय हिल जाय तो हिल जाय; पर भारत की सती देवियाँ अपने प्रग से तनिक भी नहीं डिग सकतीं।"

चूड़ावतजी प्रेम भरी नज़रों से एकटक रानी की ओर देखते देखते सीढ़ी से उतर पड़े। रानी सतृष्ण नेत्रों से ताकती रह गई।

चूड़ावतजी घोड़े पर सवार हो रहे हैं। डंके की आवाज़ घनी होती जा रही है। घोड़े फड़क फड़क कर उड़ रहे हैं। चूड़ावतजी का प्रशस्त ललाट अभी तक चिन्ता की रेखाओं से कुंचित है। रतनारे लोचन ललाम रग-रस में पगे हुए हैं।

उधर रानी विचार कर रही है—मेरे प्राणेश्वर का मन मुझमें यदि लगा रहेगा तो विजयलक्ष्मी किसी प्रकार उनके गले में जयमाला नहीं डालेगी। उन्हें मेरे सतीत्व पर कलंक लगने का भय है। कुछ अंशों में यह स्वाभा-

त्रिक भी है।

इसी विचार-तरंग में रानी डूबती उतराती है। तब तक चूड़ावतजी का अन्तिम संवाद लेकर आया हुआ एक प्रिय सेवक विनम्र भाव से कह उठता है—"चूड़ावतजी चिह्न चाहते हैं, दृढ़ आशा और आत्म-विश्वास का। सन्तोष होने योग्य कोई अपनी प्यारी वस्तु दीजिए। उन्होंने कहा है कि तुम्हारी ही आत्मा हमारे शरीर में बैठ कर इसे रणभूमि की ओर लिए जा रही है।"

स्नेह-सूचक संवाद सुन कर रानी अपने मन में विचार रही है—"प्राणेश्वर का ध्यान जब तक इस तुच्छ शरीर की ओर लगा रहेगा तब तक निश्चय ही वे कृतकार्य नहीं होंगे।" इतना सोच कर बोली, "अच्छा खड़ा रह, मेरा सिर लिए जा।"

जब तक सेवक हाँ! हाँ!! कह कर चिल्ला उठता है तब तक दाहिने हाथ में नंगी तलवार और बाएँ हाथ में लच्छेदार केशोंवाला मुण्ड लिए हुए रानी का धड़ विलास मंदिर के संगमरमरी फर्श को सती-रक्त से सींच कर पवित्र करता हुआ धड़ाक से धरती पर गिर पड़ा।

बेचारे भय-चकित सेवक ने यह 'दृढ़ आशा और अटल विश्वास का चिह्न' काँपते हुए हाथों से ले जाकर चूड़ावतजी को दे दिया। चूड़ावतजी प्रेम से पागल हो उठे। वे अपूर्व आनन्द में मस्त हो कर ऐसे प्रसन्न हो गये कि कवच की कड़ियाँ धड़ाधड़ कड़क उठीं।

सुगन्धों से सींचे हुए मुलायम बालों के गुच्छों को दो हिस्सों में चीर कर चूड़ावतजी ने उस सौभाग्य सिन्दूर को, सुन्दर शीश को गले में लटका लिया। मालूम हुआ मानों स्वयं भगवान रुद्रदेव भीषण भेष धारण कर शत्रु

का नाश करने जा रहे हों। सबको भ्रम हो उठा कि गले में काले नाग लिपट रहे हैं या लम्बी सटकारी लटें हैं! अटारियों पर से सुन्दरियों ने भर-भर अंजली फूलों की वर्षा की, मानों स्वर्ग की मानिनी अप्सराओं ने पुष्पवृष्टि की। बाजे गाजे के शब्दों के साथ घहराता हुआ आकाश फाड़ने वाला गम्भीर स्वर चारों ओर से गूँज उठा—धन्य मुण्डमाल!!!

—बाबू शिवपूजन सहाय

गोरा

कह नहीं सकते एक सुखी जी .न की वास्तविक पहचान क्या है, फिर भी इतना निश्चित है कि जीवन एक सुखी किसान था। आर्थिक दृष्टि से वह बहुत ही दरिद्री था। गाँव की हद्द जहाँ जंगल से मिलती थी, उस स्थान की २०-२५ बीघा (एक एकड़ बराबर पौने दो बीघा) मामूली ढँग की जमीन पर उसका मौरूसी हक़ था। उसके परिवार में पत्नी के अतिरिक्त २-३ बच्चे थे घर-गृहस्थी के लिए आवश्यक सामान का उसके पास अभाव नहीं था। मुरब्बा और परौंठे न सही नमकीन सत्तू ही सही—यह परिवार जिस किसी तरह दोनों जून अपने पेट के गढ़ों को भर अवश्य लेता था। पति-पत्नी में खूब निभती थी। दोनों भी शरीर से स्वस्थ औ. स्वभाव के मीठे थे। जीवन मेहनती आदमी था। उसे काम करने का शौक़ था—मानों वह इसके लिए बहाने ढूँढ़ता हो। रबी की फ़सल कट चुकने के बाद भी उसे किसी ने सुस्ताते नहीं देखा। उन दिनों के लिए वह पहले ही से अपनी जमीन के ५-७ कम उपजाऊ बीघों को घेर-घारकर तयार कर रखता था। यहाँ खरबूज़े बोये जाते थे। जीवन परिवार के वे दिन बड़े मज़े में कटते थे। खरबूज़ों के खेत में जामुन की घनी छाया के नीचे फूस की एक ज़रा-सी झोंपड़ी, यही जीवन के खरबूज़ों का स्टोर-हाऊस था और यही उसके परिवार का आश्रम-स्थान। वैशाख मास की गर्म दुपहरी जामुन के इसी पेड़ की छाया में कटा करती थी। साँझ के बाद, दिन भर बिकने से बचे हुए खरबूज़ों के साथ गेहूँ की रोटी खा कर वे लोग ईश्वर को

दुआएँ दिया करते थे। उन्हें न धनियों से द्वेष था और न ज़मींदार से ईर्ष्या।

वैशाख मास की किसी चँदनी रात को पास ही से एक हल्की-सी आवाज़ सुन कर जीवन की नींद उचट गई। क़रीब आधी रात बीत गई थी। जीवन को भय हुआ कि कहीं बाड़ फाँद कर गीदड़ तो खेत में नहीं घुस आये, परंतु एक बार चाँदनी में अपने छोटे-से खेत को भली प्रकार देख लेने पर उसका यह सन्देह दूर हो गया। इसी समय उसे फिर से वही आवाज़ सुनाई दी। यह आवाज़ सुन कर जीवन पहचान गया कि खेत के पासवाले जंगल में, कोई जंगली जीव किसी गाय के बछड़े पर आक्रमण कर रहा है। अपने खेत में किसी प्रकार का उपद्रव न देख कर पहले तो जीवन की इच्छा हुई कि न जाऊँ...क्यों मुफ्त में एक छड़े के लिए अपनी जान खतरे में डालूँ! परंतु बार बार 'बाँ' 'बाँ' की करुण चिल्लाहट सुन कर वह रह न सका। जीवन खाट से उतर कर खड़ा हो गया। एक हाथ में मज़बूत डंडा और दूसरे हाथ में टूटी हुई चिमनीवाला बरसों का पुराना हरीकेन लैंप लेकर वह उसी ओर चल दिया, जिस ओर से आवाज़ आ रही थी।

खेत की हद से मिल कर जो जंगल मीलों तक फैला हुआ था उसका प्रांत-भाग घना नहीं था। साधारण झाड़ियों और ढाक के पेड़ों के अतिरिक्त कोई बड़ा वृक्ष वहाँ नहीं था। जंगल में प्रविष्ट हो कर एक बड़े झुण्ड की ओट में उसने देखा कि एक छोटे से बछड़े पर ४-५ गीदड़ आक्रमण कर रहे हैं और वह बेचारा ज़मीन पर लेटा हुआ बड़े करुण स्वर में 'बाँ' 'बाँ' कर रहा है। एक लैंपहस्त आदमी को अपनी तरफ़ आता हुआ देख कर सब गीदड़ भाग खड़े हुए। जीवन ने पास जा कर देखा कि बछड़े को बहुत अधिक चोट नहीं आयी है। सिर्फ़ उसकी अगली दाईं टाँग और पीठ का कुछ भाग ही

ज़ख्मी हुआ है। जीवन ने अनुमान से पहचाना कि उसकी उम्र दो मास से अधिक प्रतीत नहीं होती। बछड़े का रंग बिल्कुल श्वेत था और उसके माथे पर लाल शंख का निशान बना हुआ था। जीवन बछड़े को धीरे से गोद में उठा कर अपनी झोंपड़ी में चला गया।

प्रातःकाल उठ कर जीवन ने जाँच करके देखा कि बछड़े की जात बहुत अच्छी है। अगर कुछ यत्न किया जाय तो वह एक बहुत बढ़िया बैल बन सकता है। जीवन की घरवाली अभी सोयी ही हुई थी कि जीवन ने इस बछड़े को उसकी चारपाई पर डाल दिया। वह हड़बड़ा कर उठ बैठी। इस प्रकार अकस्मात् निद्रा भंग हो जाने का कारण भी अभी तक पूरी तरह से नहीं समझ पायी थी कि उसने सुना जीवन कह रहा था—"परमेश्वर ने पालने के के लिए तुम्हें एक और बच्चा दिया है।"

पति-पत्नी दोनों ने सम्मिलित रूप से खूब सोच-विचार कर इस मनुष्येतर जाति के बालक का नाम रक्खा—'गोरा'।

जीवन की किस्मत अच्छी थी। उसके प्रयत्न से गोरा के दोनों घाव शीघ्र ही भर गये। अच्छा होकर वह खूब कू ने-फाँदने लगा। कुछ ही महीनों में गोरा का डील-डौल खूब भर आया। उसके कन्धे उन्नत और पुट्ठे मज़बूत हो गये।

(२)

देखते ही देखते 'गोरा' एक बड़ा डील-डौलवाला बैल बन गया। उसके मुक़ाबिले का बैल आसपास के अनेक गाँवों में मिलना कठिन था। उसकी चाल हाथी की चाल के समान मस्तानी थी और उसकी गरज बादल की गरज के समान गम्भीर। लोग उसे अब विस्मय के साथ देखते और

जीवन के भाग्यों की सराहना करते थे।

जीवन को गोरा पर अपने बच्चों के समान प्रेम था। प्रतिदिन दोनों समय मेहनत करके वह उसके लिए कुटी तैयार किया करता था। यथाशक्ति वह उसे कभी-कभी तेल और घी भी पिलाया करता था। जीवन की घरवाली को तो गोरा से एक तरह का मोह हो गया था। वह उसे हर समय आँखों के सामने रखना चाहती थी। उसके छोटे बच्चे उस विशालकाय बैल की चौड़ी छाती के नीचे खड़े होकर उसके गले की नरम और सुन्दर सास्ना को अपने चंचल हाथों से इधर-उधर हिलाया करते थे। गोरा आँखें बन्द करके बच्चों के इस अबोध-प्यार का मजा लिया करता था। गोरा के डील-डौल का दूसरा बैल जीवन के पास तो क्या, गाँव भर में नहीं था, इस कारण जीवन उसे हल में नहीं जोत सकता था। यही दलील देकर लोगों ने एक-एक हज़ार रुपयों तक दाम लगाकर गोरा को जीवन से ख़रीद लेना चाहा, परंतु जीवन को यह मंजूर नहीं था। वह कहता था कभी धन के लालच से कोई अपनी संतान को भी बेचता है ? जीवन के पास एक मामूली सी बैलगाड़ी थी, वह गोरा को इसी में जोता करता था।

जीवन के गाँव के नज़दीक ही एक बहुत बड़ा सरकारी मैदान था। लोगों में मशहूर था कि मुसलमानी हुकूमत के दिनों में राह चलती हुई फ़ौजें इसी मैदान में पड़ाव किया करती थीं। आजकल यह मैदान एक ग्रामीण प्रदर्शिनी के काम लाया जाता था। यहाँ शरद-ऋतु में सरकार की ओर से पशुओं की एक बड़ी भारी नुमाइश की जाती थी। दूर-दूर के लोग इस नुमाइश में अपने जानवरों को लाते थे। जो जानवर सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होते थे, उन्हें सरकार की ओर से इनाम भी दिया जाता था।

गाँव के ज़मीन्दार का नाम था लखपतराय। वह बेपरवाह, आलसी और शौक़ीन आदमी था। गाँव के काम-काज में अधिक दखल देना उसे पसन्द नहीं था। यही कारण था कि उस गाँव के किसानों को वर्ष के अधिकांश भाग में अपने ज़मींदार से कोई विशेष शिकायत नहीं रहती थी। परन्तु जिन दिनों ज़मींदार को दावत शिकार या सरकारी अफ़सरों की खातिरदारी करने का खब्त सवार होता था, उन दिनों गाँववालों की आफ़त आ जाती थी। नुमाइश के महीने में जब ज़िले के कुछ छोटे-मोटे अफ़सर इन्तज़ाम करने के लिए इस गाँव में आते थे, उन दिनों उनकी खातिर करते-करते किसानों की जान निकलने लगती थी।

प्रदर्शिनी की प्रति-स्पर्धा में भाग लेने का जमींदार को खास शौक़ था। उसने कुछ बैल और घोड़े महज़ इसी काम के लिए पाल रक्खे थे। जमींदार के जानवर थे, खाने पीने की क्या कमी? खास कर नुमाइश के दिनों में एक एक जानवर के पीछे चार चार किसान दिन-रात भागे फिरते थे। नुमाइश का सबसे पहला इनाम कई बरसों से लखपतराय को उसके एक बैल के लिए मिल रहा था। इस वर्ष भी जमींदार को यह विश्वास था कि प्रदर्शिनी का प्रथम पुरस्कार उसी के हाथ में रहेगा।

इन लोगों का यक़ीन था कि ज़मींदार के बैल का गोरा से कोई मुक़ाबिला ही नहीं है। यदि दोनों बैलों को भिड़ा दिया जाय तो गोरा एक ही वार में ज़मींदार के बैल को दूर पटक दे। इस कारण लोग जीवन पर इस बार की प्रदर्शिनी में सम्मिलित होने के लिये ज़ोर डाल रहे थे, मगर वह इन्कार करता था। पर यार लोग भी कब माननेवाले थे। खास कर जो लोग प्रति वर्ष ज़मींदार से नीचा देखते थे, वे भला इस सुवर्ण अवसर को किस तरह

हाथ से जाने देते। आखिर लोगों ने इस वर्ष की प्रदर्शिनी में सम्मिलित होने के लिए जीवन को तै ार कर ही लिया। नतीजा यह हुआ कि इस वर्ष नुमाइश का प्रथम पुरस्कार ज़मींदार को नहीं मिल सका, गोरा ही इस इनाम का अधिकारी समझा गया।

(३)

जीवन अपनी गाड़ी को घर की तरफ दौड़ाये लिए जा रहा था। गोरा के लिए गाड़ी फूल के समान हल्की थी। गोरा ने कल ही नुमाइश में नामवरी हासिल की थी, इसलिए जीवन ने उसे यथेष्ठ घी पिलाया था। गोरा के गले में उसने फूलों की एक माला डाल रखी थी। पशु होते हुए भी गोरा यह समझ गया कि आज उसका मालिक उससे विशेष प्रसन्न है। गाड़ी में बैठा हुआ जीवन, अपने ऊबड़-खाबड़ स्वर में कोई ग्रामीण गीत गा रहा था।

अपने घर के सामने पहुँचते ही जीवन का हृदय किसी निकट अनिष्ट की आशंका से काँप उठा। उसके घर के द्वार पर ज़मींदार का कारिंदा खड़ा हुआ था। जीवन का उन्मुक्त संगीत सहसा रुक गया। अजान पशु ने भी मानों अपने मालिक के मन का भाव भाँप लिया —उसकी चाल धीमी पड़ गयी।

इसी समय कारिंदे ने आगे बढ़ कर आदेश दिया—''जीवन' चलो तुम्हें ज़मींदार ने याद किया है।"

"भाई साहब" कह कर जीवन ने बड़ी नर्म आवाज़ से पूछा—"कुछ मालूम है कि मुझे मालिक ने क्यों बुलाया है?"

कारिंदे ने लापरवाही से जवाब दिया—"नहीं, मुझे क्या मालूम।"

जीवन ज़मींदार के सन्मुख पहुँचा। ज़मींदार लखपतराय अपने मकान के सहन में धीरे धीरे टहल रहा था। जीव न ने वहाँ पहुँच कर उसे झुक कर बंदगी की।

लखपतराय ने मुस्कराकर कहा—"जीवन, नुमाइश की जीत के लिए बधाई ?"

जीवन का हृदय काँप गया। यह ताना है या बधाई। उसने धीमे से सिर्फ इतना ही कहा—"यह हुजूर की मेहरबानी है।"

अब जमींदार ने खूब गंभीर हो कर कहा—"जीवन, मैं सचमुच तुम्हारे बैल से बड़ा प्रसन्न हूँ। मैं उसे तुमसे खरीद लेना चाहता हूँ। मुझे मालूम हुआ है कि वह बैल तुन्हारे यहाँ विलकुल निठल्ला रहता है; इसलिए मुझे उम्मीद है कि उसे बेचने में आनाकानी न करोगे।"

जीवन काँप गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

जमींदार ने कहा—"बोलो, चुप क्यों हो ?"

जीवन धीरे से बोला—हुजूर, आपके पास जानवरों की क्या कमी है ? मैं उस बैल को बेचना नहीं चाहता।"

"तुम्हें उसके बदले मुँह माँगा दाम मिलेगा।"

"मैं उसे किसी भी दाम पर बेचना नहीं चाहता। हुजूर, मैं खुद भी तो आपकी जायदाद हूँ।"

जमीदार ने अब प्रलोभन देने का प्रयत्न किया—"तुम्हारा लगान माफ कर दूँगा।"

जीवन ने नकारात्मक अुत्तर दिया।

जमींदार इस पर भी निराश नहीं हुआ। अब उसने अपने ब्रह्मास्त्र का वार किया—"तुम्हें यह बैल बेच देना होगा।

जीवन चुप रहा।

जमींदार ने फिर कहा—"सीधी तरह से नहीं दोगे, तो फिर किसी और

उपाय से दोगे।"

जीवन को भी आवेश आ गया। उसने काँपती हुई आवाज में कहा—"हरगिज नहीं।"

जमींदार ने कहा—"अच्छा जाओ।"

उस दिन के बाद से अभागे जीवन पर जमींदार ने सख्ती करना शुरू किया। उससे कठिन बेगार ली जाने लगी। बेगार ऐसी ली जाती थी कि गोरा को दिन-रात काम में लगा रहना पड़े कभी-कभी अकेले गोरा को ही बेगार में माँग लिया जाता था। जीवन के दरिद्र परिवार पर यह एक नई आफत आ खड़ी हुई। परन्तु फिर भी जीवन ने पराजय स्वीकार नहीं की। अपनी किस्मत के भरोसे जीवन यह सब अत्याचार सहने लगा।

(४)

जंगल से लकड़ियाँ काट कर गाँव की तरफ लौटते हुए जीवन काँप उठा। आसमान अचानक काले-काले बादलों से घिर आया था। जीवन को जिस बात का भय था, आखिर वही हुई। इन चौमासे के दिनों में गाँवों से तीन-चार मील दूर एक बरसाती नाला पार करके लकड़ियाँ काटने जाना सचमुच एक जोखिम का काम था। बरसात के कारण नाले का कोई विश्वास नहीं था, वह न जाने कब भर कर बहने लगे। प्रातःकाल लखपतराय ने जीवन को इसी जंगल से बेगार में लकड़ियाँ काट लाने का आदेश दिया था। जीवन जब घर से चला आसमान साफ था और नाले में भी कम पानी था। परन्तु साँझ के समय ज्यों ही गड्डे में लकड़ियाँ भर कर वह लौटने को तैयार हुआ त्यों ही इन्द्र-देवता की सेना ने एक साथ आकाश-मंडल पर चढ़ाई कर दी।

जीवन ने रास हिला कर गोरे को भागने का आदेश दिया। बरसाती

नाला इस स्थान से चार-पांच फर्लांग ही दूर था। जीवन की इच्छा थी कि वह जिस किसी तरह भाग कर गड्डे सहित इस नाले के पार पहुँच जाय, उसके बाद देखा जायगा। परन्तु इस समय तक वर्षा बड़े जोर से शुरू हो गयी थी। नाले के रेतीले किनारे पर पहुँच कर जीवन ने बड़े दुख के साथ देखा कि नाला खूब भर कर बह रहा है। जीवन निराश हो गया। अब कई घंटे तक इसी पर बैठे रहने को वह बाध्य था। वर्षा की बौछार जीवन के शरीर पर खुले रूप से पड़ रही थी, इसलिए वह गड्डे से उतरा। उसने गोरा को गाड़ी से खोल कर किनारे की हरी हरी घास चरने के लिए छोड़ दिया। इसके बाद गड्डे की लकड़ियों को उसने कुछ ऐसे ढंग से रखा कि उनके अंदर एक खोह-सी बन गयी। इस खोह के ऊपर अपनी चादर फैला कर वर्षा से बचने के लिए जीवन अंदर बैठ गया

सहसा गर्दन उठा कर गोरा एक बार बड़े जोर से गरज उठा। गोरा की यह गरज सुन कर जीवन भय से सिहर उठा। धड़कते हुए दिल से वह अपनी खोह से बाहर निकला। देखा, गोरा अब भी पहले ही की तरह निश्चिन्तता से हरी-हरी घास चर रहा है। वर्षा इस समय भी कम नहीं हुई। नाले के मटियाले पानी में वर्षा की बड़ी-बड़ी बूंदें पड़ कर उसे विक्षुब्ध कर रही हैं। इन बूँदों की मार से मानों वह नाला बौखला-सा उठा है। जीवन ने जंगल की तरफ़ मुड़ कर देखा—चारों ओर सन्नाटे का राज्य है। केवल वर्षा पड़ने की साँय-साँय आवाज़ इस निस्तब्धता को भंग कर रही है। जंगल के हरे-हरे वृक्ष वर्षा में एक साथ चुपचाप स्नान कर रहे हैं। जीवन ने फिर से अपना सिर खोह में छिपा लिया। इस नीरव सन्नाटे में उसे कुछ भय प्रतीत होने लगा।

थोड़ी देर में बादल फट गए। वर्षा बन्द हो गयी। पूर्व दिशा में इन्द्र-धनुष निकल आया। सूर्य डूबने में अब अधिक समय नहीं रहा था। सूर्य की अन्तिम किरणों ने बादलों में अनेकों रंग पोत दिये थे। उनके प्रतिबिंब से बरसाती नाले का पानी भी पिघले हुए सोने की उज्ज्वल धार के समान प्रतीत हो रहा था। जंगल में मोर बोलने लगे। प्रकृति का सन्नाटा भंग हो गया। चारों ओर का दृश्य स्वर्गीय हो उठा। परन्तु बेगार में पकड़े गये जीवन का ध्यान इन दृश्यों की ओर नहीं था। वह बड़ी उत्कंठा से नाले का पानी कम हो जाने की प्रतीक्षा कर रहा था।

धीरे-धीरे नाले का पानी भी उतर गया। जीवन की अब जान में जान आयी। गोरा को गड्डे में जोत कर वह फिर से अपनी खोह में आ बैठा और रास हिला कर गोरा को चलने की आज्ञा दी। सामने सूर्य अस्त हो रहा था।

किनारे के उस हरे मैदान से उतर कर गोरा नाले के रेतीले तट पर पहुँचा। परन्तु पानी के निकट पहुँचते ही गोरा किसी चीज़ को देख कर सहसा चौंक उठा। उसके पैर क्रिया-शून्य हो गये। गाड़ी रुक गयी। जीवन फिर से काँप उठा। डरते-डरते खोह में से अपना मुँह बाहर निकाला। नाले की ओर देखते ही उसके होश गुम हो गये। उसने देखा—उत्तर की ओर गड्डे से क़रीब २० गज़ दूर एक बड़ा-सा शेर खड़ा है और गड्डे की ओर देख कर घुर्रा रहा है।

अगले ही क्षण शेर बड़े ज़ोर से गरज उठा। उसकी गरज समीप-स्थित पहाड़ी के साथ टकरा कर गूँज उठी। पास के जंगल में फिर से सन्नाटा छा गया।

जीवन उसी प्रकार अनिमेष नेत्रों से शेर की तरफ़ देखता रहा। परन्तु

शेर ने अभी तक उसकी ओर नहीं देखा था, वह गोरा के श्वेत-श्वेत और मोटे-ताज़े जिस्म को देख कर ही गुर्रा रहा था। शेर की भयंकर गरज सुन कर गोरा काँप उठा। वह बड़े करुण स्वर में चिल्लाया 'बाँ—बाँ' !'

इसी समय शेर धीरे-धीरे बड़ी शान से क़दम बढ़ाता हुआ गोरा की तरफ़ बढ़ा। जीवन इस समय भी खोह से गर्दन बाहर निकाले शेर की ओर देख रहा था। यदि वह अब भी चाहता तो खोह में छिप कर अपनी जान बचा सकता था।

शेर को अपनी तरफ़ बढ़ता हुआ देख कर वह अबोध जानवर अत्यधिक करुण-स्वर से फिर चिल्लाया—"बाँ! बाँ!!

गोरा का करुण स्वर सुन कर जीवन सहसा विचलित हो उठा। उसे स्मरण हो आया—आज से दो वर्ष पूर्व गोरा की यही करुण 'बाँ' सुन कर उसने गीदड़ों से उसकी रक्षा की थी, क्या आज वह उसे शेर के मुँह से नहीं बचा सकता!

जीवन कूद कर गोरा की पीठ पर लिपट गया। अगले ही क्षण में वह शेर एक बार फिर बड़े ज़ोर से गरज कर गोरा पर झपटा, परन्तु उसके तेज़ नाखून गोरा के भरे हुए शरीर में न धँस कर जीवन की सूखी हुई पीठ में जा धँसे।

शेर ने उसी शिकार को पर्याप्त समझा। वह दरिद्र, परन्तु आश्रित-वत्सल जीवन की पवित्र देह को लेकर जँगल में प्रविष्ट हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जीवन के रिश्तेदार उसे ढूँढ़ते हुए, वहाँ पहुँचे। गोरा अब भी उसी तरह निश्चल भाव से खड़ा था। गड्ढे की खोह के ऊपर जीवन की मैली चादर अब भी उसी तरह फैली हुई थी। गोरा की पीठ पर

खून के बड़े-बड़े दाग़ और रेत पर शेर के पंजों के बड़े-बड़े निशान देख कर उन्हें सारी घटना समझने में देर न लगी।

*   *   *

जीवन का यह आत्म-बलिदान आसपास के सब गाँवों में प्रसिद्ध है। लोग उसका नाम बड़ी श्रद्धा से लेते हैं। गोरा आज भी जीवित है, परन्तु अब वह उतना मज़बूत नहीं रहा। लोग कहते हैं कि स्वामी के शोक में वह दिन-प्रति-दिन घुलता चला जा रहा है। लखपतराय भी अपने व्यवहार पर शर्मिन्दा है। उस दिन के बाद से फिर कभी उसने गोरा के लिए आग्रह नहीं किया।

—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

उसकी माँ....

दो पहर को ज़रा आराम करके उठा था। अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में, खड़ा-खड़ा, धीरे-धीरे सिगार पी रहा था और बड़ी बड़ी अलमारियों में सजी पुस्तकों की ओर निहार रहा था। किसी महान लेखक की कोई महान कृति उनमें से निकाल कर देखने की बात सोच रहा था। मगर, पुस्तकालय के एक सिरे से लेकर दूसरे तक मुझे महान ही महान नज़र आये। कहीं गेटे, कहीं रूसो, कहीं मेज़िनी, कहीं नित्शे, कहीं शेक्सपियर, कहीं टॉल्सटॉय, कहीं ह्यूगो—मोपासाँ, कहीं डिकिन्स, स्पेन्सर, मेकाले, मिल्टन, मोलियर—उफ़! इधर से उधर तक एक से एक महान ही तो थे। आखिर मैं किसके साथ चन्द मिनट मनबहलाव करूँ यह निश्चय ही न हो सका। महानों के नाम ही पढ़ते-पढ़ते परीशान-सा हो गया।

इतने में मोटर का भों-भों सुनाई पड़ा। खिड़की से झाँका तो सुर्मई रंग की कोई 'फ़ियेट' गाड़ी दिखाई पड़ी। मैं सोचने लगा—शायद कोई मित्र पधारे हैं, अच्छा ही है। महानों से जान बची।

जब नौकर ने सलाम कर आनेवाले का कार्ड दिया, तब मैं कुछ घबराया। उस पर शहर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट का नाम छपा था। ऐसे बेवक्त यह कैसे आये?

पुलीस पति भीतर आये। मैंने, हाथ मिला कर एक चक्कर खानेवाली गद्दीदार कुर्सी पर उन्हें आसन दिया। वह व्यापारिक मुस्कराहट से लैस हो

कर बोले—

"इस अचानक आगमन के लिए आप मुझे क्षमा करें।"

"आज्ञा हो।"—मैंने भी नम्रता से कहा।

उन्होंने पाकेट से डायरी निकाली, डायरी से एक तस्वीर—"देखिये इसे। ज़रा बताइए तो आप पहचानते हैं, इसको?"

हाँ, पहचानता तो हूँ।" ज़रा सहमते हुए मैंने बताया।

"इसके बारे में मुझे आप से कुछ पूछना है।"

"पूछिये।"

"इसका नाम क्या है?"

"लाल। मैं इसी नाम से बचपन ही से इसे पुकारता आ रहा हूँ। मगर, यह पुकारने का नाम है। एक नाम कोई और है, सो मुझे स्मरण नहीं।"

"कहाँ रहता है यह?"—सुपरिंटेंडेंट ने पुलिस की धूर्त-दृष्टि से मेरी ओर देख कर पूछा।

"मेरे बँगले के ठीक सामने, एक दोमंजिला कच्चा-पक्का घर है, उसीमें वह रहता है। वह है और उसकी बूढ़ी माँ।"

"बूढ़ी का नाम क्या है?"

"जानकी।"

"और कोई नहीं है, क्या इसके परिवार में? दोनों का पालन-पोषण कौन करता है?"

"सात-आठ वर्ष हुए, लाल के पिता का देहान्त हो गया। अब उस परिवार में वह और उसकी माता बचे हैं। उसका पिता जब तक जीवित रहा बराबर मेरी जमींदारी का मुख्य मैनेजर रहा। उसका नाम रामनाथ था। वही

मेरे पास कुछ-हजार रुपये जमा कर गया था, जिससे अब तक उनका खरचा-बरचा चल रहा है। लड़का कालेज में पढ़ रहा है। जानकी को आशा है, वह साल-दो-साल बाद कमाने और परिवार को सँभालने लगेगा। मगर,—क्षमा कीजिये, क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि आप उसके बारे में क्यों इतनी पूछताछ कर रहे हैं ?"

"यह तो मैं आपको नहीं बता सकता, मगर इतना आप समझ लें, यह सरकारी काम है। इसीलिए आज मैंने आपको इतनी तकलीफ़ दी है।"

"अजी, इसमें तकलीफ़ की क्या बात है। हम तो सात पुश्त से सरकार के फरमाबरदार हैं। और कुछ आज्ञा··· ।"

"एक बात और" पुलीस-पति ने गम्भीरता से, धीरे से कहा—मैं मित्रता से आपसे निवेदन करता हूँ। आप इस परिवार से जरा साव-धान और दूर रहें। फिलहाल इससे अधिक मुझे कुछ कहना नहीं।"

२

"लाल की माँ !" एक दिन जानकी को बुला कर मैंने समझाया—"तुम्हारा लाल आजकल क्या पाजीपना करता है ? तुम उसे केवल प्यार-प्यार ही करती हो न ? हूँ; भोगोगी।"

"क्या है बाबू ?" उसने कहा—"लाल क्या करता है ? मैं तो उसे कोई भी बुरा काम करते नहीं देखती।"

"बिना किये ही तो सरकार किसी के पीछे पड़ती नहीं। हाँ लाल की माँ ! बड़ी धर्मात्मा, विवेकी और न्यायी सरकार है यह। जरूर तुम्हारा लाल कुछ करता होगा।"

"माँ ! माँ !!" पुकारता हुआ उसी समय, लाल भी आया। लंबा,

सुडौल, सुन्दर, तेजस्वी।

"माँ!" उसने मुझे नमस्कार कर जानकी से कहा—तू यहाँ भाग आयी है। चल तो मेरे कई सहपाठी वहाँ खड़े हैं। उन्हें चटपट कुछ जलपान करा दो। फिर हम घूमने जायँगे।"

"अरे!' जानकी के चेहरे की झुर्रियाँ चमकने लगीं, काँपने लगी, उसे देख कर बोली—"तू आ गया, लाल! चलती हूँ भैये। पर देख तो, तेरे चाचा क्या शिकायत कर रहे हैं। तू क्या पाजीपना करता है, बेटा?"

"क्या है चाचा जी?" उसने सविनय, सुमधुर स्वर से मुझसे पूछा—"मैंने क्या अपराध किया है?"

"मैं तुमसे नाराज हूँ लाल!" मैंने गम्भीर स्वर में कहा।

"क्यों चाचाजी?"

"तुम बहुत बुरा करते हो, जो सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र करने वालों के साथी हो। हाँ, हाँ—तुम हो। देखो लाल की माँ; इसके चहरे का रंग उड़ गया। यह सोच कर कि यह खबर मुझे कैसे मिली!"

सचमुच एक बार उसका खिला हुआ रंग ज़रा मुरझा गया, मेरी बातों से। पर तुरन्त ही वह संभला।

"आपने ग़लत सुना, चाचाजी। मैं किसी षड्यन्त्र में नहीं। हाँ, मेरे विचार स्वतन्त्र अवश्य हैं। मैं जरूरत-बेजरूरत जिस-तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ, देश की दुरवस्था पर उबल उठता हूँ, इस पशु-हृदया परतन्त्रता पर।"

"तुम्हारी ही बात सही, तुम षड्यन्त्र में नहीं, विद्रोह में नहीं, पर यह बकझक क्यों? इससे फायदा? तुम्हारी इस बकझक से न तो देश की दुर्दशा

दूर होगी और न उसकी पराधीनता। तुम्हारा काम पढ़ना है—पढ़ो। इसके बाद कर्म करना होगा, परिवार और देश की मर्यादा बचानी होगी। तुम पहले अपने घर का उद्धार तो कर लो, तब सरकार के सुधार का विचार करना।"

उसने नम्रता से कहा—"चाचाजी, क्षमा कीजिये। इस विषय में मैं आपसे विवाद करना नहीं चाहता।"

"चाहना होगा, विवाद करना होगा। मैं केवल चाचाजी नहीं, तुम्हारा बहुत कुछ हूँ। तुम्हें देखते ही मेरी आँखों के सामने रामनाथ नाचने लगते हैं। तुम्हारी बूढ़ी माँ, घूमने लगती हैं। भला मैं तुम्हें बे-हाथ होने दे सकता हूँ? इस भरोसे न रहना।"

"इस पराधीनता के विवाद में, चाचाजी मैं और आप दो भिन्न सिरों पर हैं। आप कट्टर राज-भक्त, मैं कट्टर राज-विद्रोही। आप पहली बात को उचित समझते हैं, कुछ कारणों से; मैं दूसरी को, दूसरे कारणों से। आप अपना पथ छोड़ नहीं सकते—अपनी प्यारी कल्पनाओं के लिये। मैं भी अपना पथ नहीं छोड़ सकता।"

"तुम्हारी कल्पनाएँ क्या हैं? सुनूँ भी। जरा मैं भी जान लूँ कि अब के लड़के, कालेज की गर्दन तक पहुँचते पहुँचते, कैसे-कैसे हवाई किले उठाने के सपने देखने लगते हैं। ज़रा मैं भी सुनूँ—बेटा!"

"मेरी कल्पना यह है कि, जो व्यक्ति समाज या राष्ट्र किसी अन्य व्यक्ति समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो—उसका सर्वनाश हो जाय।"

जानकी उठ कर बाहर चली।—"अरे, तू तो जम कर चाचा से जूझने लगा। वहाँ चार बच्चे बेचारे दरवाजे पर खड़े होंगे, लड़ तू, मैं जाती हूँ।" उसने मुझसे कहा—"समझा दो बाबू मैं तो आप ही कुछ नहीं समझती; फिर

इसे क्या समझाऊँगी।" उसने फिर लाल की ओर देखा—"चाचा जो कहें, मान जा बेटा। यह तेरे भले ही के लिये कहेंगे।"

वह बेचारी, कमर झुकाये उस साठ बरस की वय में घूँघट सँभाले, चली गयी। उस दिन उसने मेरी और लाल की बातों की गंभीरता नहीं समझी।

"मेरी कल्पना यह है कि···" उत्तेजित स्वर से लाल ने कहा—"ऐसे दुष्ट, नाशक, व्यक्ति; समाज या राष्ट्र के सर्वनाश में मेरा भी हाथ हो।"

"तुम्हारे हाथ दुर्वल हैं; उनसे, जिनसे तुम पंजा लेने जा रहे हो चर्रर मर्रर हो उठेंगे। नष्ट हो जायँगे।"

"चाचाजी, नष्ट हो जाना तो यहाँ का नियम है। जो सवाँरा गया है, वह बिगड़े ही गा। हमें दुर्बलता के डर से अपना काम नहीं रोकना चाहिए। कर्म के समय हमारी भुजाएँ दुर्वल नहीं, भगवान् की सहस्र भुजाओं की सखी हैं।"

"तो, तुम क्या करना चाहते हो?"

"जो भी मुझसे हो सकेगा, करूँगा।"

"षड्यन्त्र···?"

"ज़रूरत पड़ी तो ज़रूर···"

"विद्रोह···?"

हाँ, अवश्य!"

"हत्या···?"

"हाँ—हाँ—हाँ—।"

"बेटा,तुम्हारा माथा, न-जाने कौन किताब पढ़ते-पढ़ते बिगड़ रहा है। सावधान!"

३

मेरी धर्मपत्नी और लाल की माँ, एक दिन बैठी हुई बातें कर रही थीं कि मैं पहुँच गया। कुछ पूछने के लिए कई दिनों से मैं उसकी तलाश में था।

"क्यों लाल की माँ, ! लाल के साथ किसके लड़के आते हैं, तुम्हारे घर में ?"

"मैं क्या जानूँ बाबू" उसने सरलता से कहा—"मगर वे सभी मेरे लाल ही की तरह प्यारे मुझे दिखते हैं। सब लापर्वाह। वे इतना हँसते, गाते और हो हल्ला मचाते हैं, कि मैं मुग्ध हो जाती हूँ।"

मैंने एक ठण्डी साँस ली —'हूँ, ठीक कहती हो। वे बातें कैसी करते हैं ? कुछ समझ पाती हो ?"

बाबू, वे लाल की बैठक में बैठते हैं। कभी कभी जब मैं उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने जाती हूँ, तब वे बड़े प्रेम से मुझे 'माँ' कहते हैं। मेरी छाती फूल उठती है।—मानो वे मेरे ही बच्चे हैं।"

हूँ···" मैंने फिर साँस ली।

"एक लड़का उनमें बहुत ही हँसोड़ है। खूब तगड़ा और बली दिखता है। लाल कहता था, वह डण्डा लड़ने में, दौड़ने में, घूँसेबाजी में, खाने में, छेड़खानी करने और हो-हो हा-हा कर, हँसने में समूचे कॉलेज में फर्द है। उसी लड़के ने एक दिन, जब मैं उन्हें हलवा परस रही थी मेरे मुँह की ओर देख कर कहा—"माँ ! तू तो ठीक भारत-माता-सी लगती है। तू बूढ़ी, वह बूढ़ी। उसका हिमालय उजला है, तेरे केश। हाँ मैं नक्शे से साबित करता हूँ।—तू भारत-माता है। सर तेरा हिमालय, माथे की दोनों गहरी रेखाएँ गंगा और यमुना। यह नाक विन्ध्याचल, दाढ़ी कन्याकुमारी तथा छोटी-

बड़ी झुर्रियाँ-रेखाएँ भिन्न-भिन्न पहाड़ और नदियाँ हैं। जरा पास आ मेरे। तेरे केशों को पीछे से आगे—बाएँ कन्धे पर लहरा दूँ। वह बर्मा बन जायगा। विना उसके भारत माता का श्रृंगार शुद्ध न होगा।"

जानकी उस लड़के की बातें सोच गद्‌गद हो उठी "बाबू, ऐसा ढीठ लड़का। सारे बच्चे हँसते रहे और उसने मुझे पकड़, मेरे बालों को बाहर कर अपना बर्मा तैयार कर लिया। कहने लगा—देख, तेरा यह दाहिना कान कच्छ की खाड़ी है—बम्बई के आगेवाली; और यह बायाँ —बंगाल की खाड़ी। माँ, तू सीधा मुँह करके ज़रा खड़ी हो। मैं तेरी ठुड्‌ढी के नीचे, उससे दो अंगुल के फासले पर, हाथ जोड़ कर घुटनों पर बैठता हूँ। दाढ़ी तेरी कन्या कुमारी — हा हा हा हा !—और मेरे जुड़े, जरा तिरछे, हाथ सिलोन—लंका ! —हा हा हा हा !!—बोल, भारत माता की जय।"

"सब लड़के ठहाका लगा कर हँसने लगे। वह घुटने टेक कर, हाथ जोड़ कर, मेरे पावों के पास बैठ गया। मैं हक्की-बक्की-सी हँसनेवालों का मुँह निहारने लगी। बाबू, वे सभी बच्चे मेरे 'लाल' हैं, सभी मुझे 'माँ'—गा कर—कहते हैं।"

उसकी सरलता मेरी आखों में आँसू बन कर छा गयी। मैंने पूछा—"लाल की माँ ! और भी वे कुछ बातें करते हैं ? लड़ने की, झगड़ने की, गोला गोली या बन्दूक की ?"

"अरे बाबू' उसने मुस्करा कर कहा—"वे सभी बातें करते हैं। उनकी बातों का कोई मतलब थोड़े ही होता है। सब जवान हैं, लापर्वाह हैं, जो मुँह में आता है, बकते हैं। कभी कभी तो पागलों-सी बातें करते हैं। महीना भर पहले एक दिन लड़के बहुत उत्तेजित थे। वे जब बैठक में बैठ कर गलचौर

करने लगते हैं, तब कभी-कभी उनका पागलपन सुनने के लोभ से, मैं दरवाजे से सट और छिप कर खड़ी हो जाती हूँ।"

"न जाने कहाँ, लड़कों को सरकार पकड़ रही है। मालूम नहीं, पकड़ती भी है या वे योंही गप हाँकते थे। मगर उस दिन वे यही बक रहे थे। कहते थे—पुलीसवाले केवल सन्देह पर भले आदमियों के बच्चों को त्रास देते हैं, मारते हैं, सताते हैं। यह अत्याचारी पुलीस की नीचता है। ऐसी नीच शासन-प्रणाली को स्वीकार करना, अपने धर्म को, कर्म को, आत्मा को परमात्मा को भुलाना है—धीरे-धीरे घुलाना, मिटाना है।"

एक ने, उत्तेजित भाव से, कहा—"अजी, यह परदेशी कौन लगते हैं हमारे, जो हमें बरबस, राज-भक्त बनाये रखने के लिये, हमारी छाती पर तोप का मुँह लगाये, अड़े और खड़े हैं? उफ़! इस देश के लोगों की हिये की आँखें मुँद गई हैं, तभी तो इतने जुल्मों पर भी आदमी, आदमी से डरता है। ये लोग शरीर की रक्षा के लिए अपनी अपनी आत्मा की चिता सँवारते फिरते हैं। नाश हो इस परतन्त्रवाद का!"

दूसरे ने कहा—"लोग ज्ञानी न हो सकें, इसलिये इस सरकार ने हमारे पढ़ने-लिखने के साधनों को अज्ञान से भर रखा है। लोग वीर और स्वाधीन न हो सकें, इसलिए अपमानजनक और मनुष्यता-नीति-मर्दक कानून गढ़े हैं। गरीबों को चूस कर सेना के नाम पर, पले हुए पशुओं को शराब से, कवाब से, मोटा-ताजा रखती है, यह सरकार। धीरे-धीरे जोंक की तरह हमारे देश का धर्म, प्राण और धन चूसती चली जा रही है, यह लूटक-शासन-प्रणाली। नाश हो इस प्रणाली का! इस प्रणाली की तस्वीर सरकार का!"

"तीसरा, वही बँगड़, बोला—सब से बुरी बात है, जो सरकार रोब

से—'सत्तावनी'—रोब से—धाक से, धाँधली से, धुआँ से; हम पर शासन करती है। यह, आँखें खोलते ही, कुचल-कुचल कर, हमें दब्बू, कायर, हतवीर्य, बनाती है। और किस लिये ज़रा सोचो तो मुट्ठी भर मनुष्यों को अरुण और कुबेर बनाए रखने के लिए, मुट्ठी-भर मनचले सारे संसार की मनुष्यता की मिट्टी पलीत करें, परमात्मा-प्रदत्त स्वाधीनता का संहार करें—छिः! नाश हो ऐसे मनचलों का!"

"ऐसे ही अण्ट-सण्ट ये बातूनी बका करते हैं बाबू। जभी चार छोकरे जुड़े, तभी यह चर्चा। लाल के साथियों का मिज़ाज भी, उसी-सा, अल्हड़-बिल्हड़ मुझे मालूम पड़ता है। ये लड़के ज्यों-ज्यों पढ़ते जा रहे हैं, त्यों-त्यों बकबक में भी बढ़ते जा रहे हैं।"

"यह बुरा है, लाल की माँ!" मैंने गहरी साँस ली।

४

ज़मींदारी के कुछ जरूरी काम से मैं चार-पाँच दिनों के लिए बाहर गया था। लौटने पर बँगले में घुसने के पूर्व लाल के दरवाजे पर जो नज़र पड़ी तो वहाँ एक भयानक सन्नाटा-सा नजर आया। जैसे घर उदास हो, रोता हो।

भीतर आने पर मेरी धर्मपत्नी मेरे सामने उदास-मुख खड़ी हो गयी।

"तुमने सुना?"

"नहीं तो, कौन-सी बात?"

"लाल की माँ पर भयानक विपत्ति टूट पड़ी है।" मैं कुछ कुछ समझ गया, फिर भी, विस्तृत विवरण जानने को उत्सुक हो उठा—"क्या हुआ? ज़रा साफ साफ बताओ।"

"वही हुआ, जिसका तुम्हें भय था। कल पुलीस की एक पलटन ने

लाल का घर घेर लिया था। बारह घण्टे तक तलाशी हुई। लाल, उसके बारह-पन्द्रह साथी, सभी पकड़ लिये गये हैं। सभी लड़कों के घरों की तलाशी हुई है। सब के घर से भयानक चीज़ें निकली हैं।"

"लाल के यहाँ...?"

"उसके यहाँ भी दो पिस्तौल, बहुत से कारतूस और पत्र पाये गये हैं। सुना है, उन पर हत्या, षड्यन्त्र, सरकारी राज्य उलटने की चेष्टा, आदि अपराध लगाये गये हैं।"

"हूँ" मैंने ठण्ढी साँस ली—"मैं तो महीनों से चिल्ला रहा था कि यह लौंडा धोखा देगा। अब वह बूढ़ी बेचारी मरी। वह कहाँ है? तलाशी के बाद तुम्हारे पास आई थी?"

"जानकी मेरे पास कहाँ आई। बुलवाने पर भी कल नकार गई। नौकर से कहलाया—पराठे बना रही हूँ, हलुवा तरकारी अभी बनाना है। नहीं तो वे बिल्हड़ बच्चे हवालात में मुरझा न जाएँगे। जेलवाले और उत्साही बच्चों की दुश्मन यह सरकार उन्हें भूखों मार डालेंगे, मगर मेरे जीते जी यह नहीं होने का।"

"वह पागल है, भोगेगी।" मैं दुःख से टूट कर एक चारपाई पर भहरा पड़ा। मुझे लाल के कर्मों पर घोर खेद हुआ।

इसके बाद, प्रायः एक वर्ष तक वह मुक़दमा चला। कोई भी अदालत के कागज़ उलट कर देख सकता है। सी० आई० डी० ने—और उसके मुख्य सरकारी वकील ने—उन लड़कों पर बड़े-बड़े दोषारोप किये। उन्होंने चारों ओर गुप्त समितियाँ स्थापित की थीं, उनके खर्चे और प्रचार के लिए डाके डाले थे, सरकारी अधिकारियों के यहाँ रात में छापा मार कर, शस्त्र एकत्र किये थे,

पलटन में उन्होंने बगावत फैलाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने न जाने कहाँ न जाने किस पुलिस के दारोगा को मारा था; और न जाने कहाँ, न जाने किस पुलिस सुपरिंटेंडेंट को! ये सभी बातें, सरकार की ओर से प्रमाणित की गई।

उधर उन लड़कों की पीठ पर कौन था? प्रायः कोई नहीं। सरकार के डर के मारे पहले तो कोई वकील ही उन्हें नहीं मिल रहा था, फिर एक बेचारा मिला भी; तो, 'नहीं' का भाई। हाँ, उनकी पैरवी में सबसे अधिक परीशान वह बूढ़ी रहा करती। वह सुबह शाम उन बच्चों को—लोटा, थाली, जेवर आदि बेच बेच कर भोजन पहुँचाती। फिर वकीलों के यहाँ जा कर दाँत निपोरती, गिड़गिड़ाती कहती—

"सब झूठ है। न जाने कहाँ से, पुलीसवालों ने ऐसी-ऐसी चीजें हमारे घरों से पैदा कर दी हैं। वे लड़के केवल बातूनी हैं—हाँ मैं भगवान् का चरण छू कर कह सकती हूँ। तुम जेल में जा कर देख आओ वकील बाबू! भला वे फूल-से बच्चे हत्या कर सकते हैं?"

उसका तन सूख कर काँटा हो गया, कमर झुक कर धनुष-सी हो गई, आँखें निस्तेज, मगर उन बच्चों के लिये दौड़ना, हाय-हाय करना, उसने बंद न किया। कभी कभी सरकारी नौकर, पुलीस या वार्डर झुँझला कर उसे झिड़क देते, धकिया देते। तब वह खड़ी हो जाती छड़ी के सहारे कमर सीधी कर—"अरे, अरे! तुम कैसे जवान हो, कैसे आदमी हो। मैं तो उन भोले बच्चों के लिए दौड़ती-मरती हूँ और तुम मुझे धक्के दे रहे हो! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, भैया?"

उसको अन्त तक यही विश्वास रहा कि यह सब पुलीस की चाल-बाजी है। अदालत में जब दूध का दूध पानी का पानी किया जायगा, तब वे बच्चे

ज़रूर बे-दाग़ छूट जायँगे। वे फिर उसके घर में लाल के साथ आवेंगे। हा-हा-हो-हो करेंगे। उसे 'माँ' कह कर पुकारेंगे।

मगर, उस दिन उसकी कमर टूट गयी, जिस दिन ऊँची अदालत ने भी लाल को, उस बंगड़ लठैत को तथा दो और लड़कों को फाँसी और दस को दस वर्ष तक की कड़ी सजाएँ दीं।

वह अदालत के बाहर झुकी खड़ी थी। बच्चे बेड़ियाँ बजाते, मस्ती से झूमते, बाहर आये। सबसे पहले उस बंगड़ की नज़र उस पर पड़ी—

"माँ !" वह मुस्कराया—"अरे, हमें तो हलुवा खिला-खिला कर तूने गधे-सा तगड़ा कर दिया है ऐसा कि, फाँसी की रस्सी टूट जाय और हम अमर के अमर बने रहें। मगर तू स्वयं सूख कर काँटा हो गई है। क्यों पगली—तेरे लिए घर में खाना नहीं है क्या ?"

"माँ !" उसके लाल ने कहा—"तू भी जल्द वहीं आना, जहाँ हम लोग जा रहे हैं। यहाँ से थोड़ी देर का रास्ता है माँ ! एक साँस में पहुँचेगी। वहीं, हम स्वतन्त्रता से मिलेंगे। तेरी गोद में खेलेंगे। तुझे कन्धे पर उठा कर इधर से उधर दौड़ते फिरेंगे। समझती है ? वहाँ बड़ा आनन्द है !"

"आवेगी न माँ ?"—बंगड़ ने पूछा।

"आवेगी न माँ ?" लाल ने पूछा।

"आवेगी न माँ ?" फाँसी दण्ड प्राप्त दो दूसरे लड़कों ने भी पूछा।

और वह बकर-बकर उनका मुँह ताकती रही—"तुम कहाँ जाओगे पागलो ?

जब से लाल और उसके साथी पकड़े गये, तब से शहर या मुहल्ले का कोई भी आदमी लाल की माँ से मिलने में डरता था। उसे रास्ते में देख कर

जान-पहचानी बग़लें झाँकने लगते। मेरा स्वयं अपार प्रेम था उस बेचारी बूढ़ी पर; मगर मैं भी बराबर दूर ही रहा। कौन अपनी गर्दन मुसीबत में डालता, विद्रोही की माँ से सबन्ध रख कर ?

उस दिन, ब्यालू करने के बाद कुछ देर के लिए पुस्तकालयवाले कमरे में गया। वहीं, किसी महान् लेखक की कोई महान् कृति क्षण भर देखने के लालच से मैंने मेजिनी की एक जिल्द निकाल कर उसे खोला। उसके पहले ही पन्ने पर पेंसिल की लिखावट देख कर चौंका। ध्यान देने पर पता चला, लाल का वह हस्ताक्षर था। मुझे याद पड़ा। तीन बरस पूर्व, उस पुस्तक को मुझसे माँग कर उस लड़के ने पढ़ा था।

एक बार मेरे मन में बड़ा मोह उत्पन्न हुआ था, उस लड़के के लिये। उसके वफ़ादार पिता रामनाथ की दिव्य और स्वर्गीय तस्वीर मेरी आँखों के आगे नाच गई। लाल की माँ पर उस पाजी के सिद्धान्तों, विचारों या आचरणों के कारण जो वज्रपात हुआ था, उसकी एक ठेस मुझे भी, उसके हस्ताक्षर को देखते ही, लगी। मेरी एक गम्भीर, लाचार, दुर्बल साँस निकल कर रह गई।

पर, दूसरे ही क्षण पुलीस सुपरिंटेंडेंट का ध्यान आया। उसकी भूरी, सुहावनी, अमानवी आँखें मेरी, आप सुखी तो जगसुखी आँखों में वैसे ही चमक गईं जैसे ऊजड़ गाँव के सिवान में कभी कभी भुतही चिनगारी चमक जाया करती है। उसके रूखे फ़ौलादी हाथ—जिनमें लाल की तस्वीर थी—मानों मेरी गर्दन चाँपने लगे। मैं मेज़ पर से 'इरेज़र' (रबर) उठा कर उस पुस्तक पर से उसका नाम उधेड़ने लगा।

इसी समय मेरी पत्नी के साथ लाल की माँ वहाँ आई। उसके हाथ में एक पत्र था।

"अरे ?" मैं अपने को रोक न सका—"लाल की माँ ! तुम तो बिलकुल पीली पड़ गई हो। तुम इस तरह मेरी ओर निहारती हो, मानों कुछ देख ही नहीं रही हो। यह, हाथ में क्या है ?"

उसने चुपचाप पत्र मेरे हाथ में दे दिया। मैंने देखा उस पर…जेल की मुहर थी। सज़ा सुनाने के बाद वह वहीं भेज दिया गया था, यह मुझे मालूम था।

मैं पत्र निकाल कर पढ़ने लगा। वह उसकी अन्तिम चिट्ठी थी। मैंने कलेजा रूखा कर, उसे ज़ोर से पढ़ दिया।

"माँ,

जिस दिन तुम्हें यह पत्र मिलेगा उसके ठीक सवेरे मैं, बाल अरुण के किरण-रथ पर चढ़ कर, उस ओर चला जाऊंगा। मैं चाहता तो अन्त समय तुमसे मिल सकता था; मगर इससे क्या फायदा ? मुझे विश्वास है, तुम मेरी जन्म-जन्मान्तर की जननी हो, रहोगी ! मैं तुमसे दूर कहाँ जा सकता हूँ ? माँ ! जब तक पवन साँस लेता है, सूर्य चमकता है, समुद्र लहराता है, तब तक कौन मुझे तुम्हारी करुणामयी गोद से दूर खींच सकता है ?

दिवाकर थमा रहेगा; अरुण रथ लिये जमा रहेगा; मैं, बंगड़, वह सभी तेरे इन्तज़ार में रहेंगे।

हम मिले थे, मिले हैं, मिलेंगे—हाँ, माँ ! तेरा 'लाल'।"

काँपते हाथ से, पढ़ने के बाद, पत्र को मैंने उस भयानक लिफाफे में भर दिया। मेरी पत्नी की विकलता हिचकियों पर चढ़ा कर कमरे को करुणा से कँपाने लगी। मगर वह जानकी ज्यों की त्यों, लकड़ी पर झुकी, पूरी खुली और भावहीन आँखों से मेरी ओर देखती रही। मानो वह उस कमरे में थी ही नहीं।

क्षण भर बाद हाथ बढ़ा कर, मौन भाषा में पत्र माँगा। और फिर, बिना कुछ कहे, कमरे के—घर के—फाटक के बाहर हो गई, डुगुर, डुगुर, लाठी टेकती हुई।

इसके बाद शून्य-सा होकर मैं धम से कुर्सी पर गिर पड़ा। माथा चक्कर खाने लगा। उस पाजी लड़के के लिए नहीं, इस सरकार की क्रूरता के लिये भी नहीं—उस बेचारी, भोली बूढ़ी जान की—लाल की माँ के लिये। आह! वह कैसी स्तब्ध थी। उतनी स्तब्धता किसी दिन प्रकृति को मिलती, तो आँधी आ जाती। समुद्र पाता, तो बौखला उठता।

जब एक घण्टा बजा, मैं ज़रा सगबगाया। ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानो हरारत पैदा हो गई है—माथे में, छाती में, रग-रग में। पत्नी ने आकर कहा—"बैठे ही रहोगे, सोओगे नहीं, सोओगे नहीं?" मैंने इशारे से उन्हें जाने को कहा।

फिर, मेज़िनी की जिल्द पर नज़र गई। उसके ऊपर पड़े रबर पर भी। फिर, अपने सुखों की, ज़मीदारी की, धनिक-जीवन की और उस पुलिस अधिकारी की निर्दय, नीरस, निस्तार आँखों की स्मृति कलेजे में कम्पन कर गई। फिर रबर उठा कर, मैंने उस पाजी का पेंसिलखचित नाम, पुस्तक की छाती पर से, मिटा डालना चाहा।

"माँ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ!"

मुझे सुनाई पड़ा। ऐसा लगा, गोया लाल की माँ कराह रही है। मैं रबर हाथ में लिये, दहलते दिल से, खिड़की की ओर बढ़ा, लाल के घर की ओर देखने के लिये। पर, चारों ओर अंधकार था, कुछ नहीं दिखाई पड़ा। कान लगाने पर कुछ सुनाई भी न पड़ा। मैं सोचने लगा, भ्रम होगा। वह कराहने

वाली औरत है भी नहीं। रामनाथ के मरने पर भी उस तरह नहीं घिघियाई थी, जैसे साधारण स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर तड़पा करती हैं।

मैं पुनः उसीकी बात सोचने लगा। वह उस नालायक के लिये क्या नहीं करती थी। खिलौना की तरह, आराध्य की तरह, उसे दुलारती और सँवारती फिरती थी, पर आह रे छोकरे!…

"माँ ाँ ाँ ाँ ाँ!"

फिर वही आवाज़! ज़रूर जानकी रो रही है, वैसे ही जैसे कुर्बानी के पूर्व गाय रोये। ज़रूर वही विकल, व्यथित, विवश बिलख रही है। हाय री माँ अभागिनी, ऐसे पुकार रही है, जैसे वह पाजी गा कर मचल कर, स्वर को खींच कर उसे पुकारता था।

अँधेरा धूमिल हुआ, फीका पड़ा, मिट चला; ऊषा पीली हुई, लाल हुई, अरुण रथ लेकर वहाँ—क्षितिज के उस छोर पर—आ कर, पवित्र मन से, खड़ी हो गई। मुझे लाल के पत्र की याद आ गई।

"माँ ाँ ाँ ाँ ाँ!"

मानो, लाल पुकार रहा था, मानो, जानकी प्रतिध्वनि की तरह उसी पुकार को गा रही थी। मेरी छाती धक् धक् करने लगी। मैंने नौकर को पुकार कर कहा—

"देखो तो, लाल की माँ क्या कर रही है?"

जब वह लौटकर आया तब मैं—एक बार पुनः मेज़ और मेज़िनी के सामने खड़ा। हाथ में रबर लिये—उसी—उसी उद्देश्य से। उसने घबड़ाए स्वर में कहा—

"हुज़ूर, उनकी तो अजीब हालत है। घर में ताला पड़ा है और वह

दरवाजे पर पाँव पसारे हाथ में कोई चिट्ठी लिये, मुँह खोले, मरी बैठी हैं। हाँ सरकार! विश्वास मानिये, वह मर गई हैं।। साँस बन्द है—आँखें खुली।"

—पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

हँसूँ या रोऊँ

राय छोटेलाल हमारे शहर में मुँसिफ थे। एक भले अधिकारी थे। सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने के कारण लोकप्रिय भी थे। गरीबों से उनका व्यवहार अच्छा रहता था। दान-धर्म भी पर्याप्त मात्रा में किया करते थे। थोड़ी सी बीमारी के बाद हृदय की गति बन्द होने से उनकी एकाएक मृत्यु हो गयी। उनकी श्मशान-यात्रा में हजारों की संख्या में जनता साथ थी। मैं भी सम्मिलित हो गया था। चिता सुलग चुकी थी, उसकी ज्वालायें ऊपर तक आकाश में लपक रही थीं। चिता की उष्णता दूर तक अनुभव की जा रही थी। उस गर्मी के कारण सभी लोग चिता से दूर रह कर अलग-अलग वृक्षों की छाया में ही टीन-शेड के नीचे, या किसी दीवार की आड़ में जहाँ कहीं धूप से बचाव हो सके, इसी प्रतीक्षा में बैठे थे कि कपाल-क्रिया हो जाय तो वे अपने-अपने घर का रास्ता लें। मैं भी अपने कुछ मित्रों के साथ एक पेड़ की छाया में चुपचाप बैठा हुआ जमीन पर एक तिनके से लकीरें खींच रहा था। इसी बीच पास से एक सज्जन, संभवतः मुझे पहचान कर मेरी तरफ आये और समीप आ कर उन्होंने अभिवादन किया। मैंने अपनी स्मरणशक्ति पर जहां तक हो सका दबाव डाला परन्तु पूरे प्रयत्न के उपरान्त भी पहचानने में मैं असमर्थ ही रहा। यह सही है कि मैंने उन्हें नहीं पहचाना, तो भी अभिवादन करने पर शिष्टाचार का यह तरीका है कि औपचारिक तौर पर अभिवादन करने वाले से कुछ न कुछ बातचीत की जाय और खुशहाली के

सम्बन्ध में उससे पूछ-ताछ की जाय। सदाचार के इस नियम के अनुसार मैंने प्रश्न फेंक दिया, "क्यों भाई! ठीक तो हो, आनन्द-प्रसन्न हो।

किसी अनभिज्ञ व्यक्ति से इससे अधिक कुछ पूछा भी नहीं जा सकता। उसने बहुत धीमे स्वर में उत्तर दिया,

"नहीं महाशय जी, आप तो जानते ही हैं कि अब धन्धा-बन्धा कुछ ठीक नहीं चल रहा है, किसी दूसरे कारोबार की खोज में हूँ।"

"भाई! बताओ तो सही कि ऐसी कौन सी कठिनाई तुम्हारे सामने आ पड़ी है, जिसके हल करने में तुम असमर्थता अनुभव कर रहे हो? संभव है कि मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ।"

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उस अपरिचित मित्र ने जो कुछ कहा उसको मै जन्म-जन्मान्तर में भी भूल नहीं सकता। उसके उस उत्तर में मनुष्य का स्वार्थी स्वभाव अपनी ननावस्था में खुले तौर पर दृष्टिगोचर हो रहा था। उत्तर देते समय उसका चेहरा विकृत था। ऐसा जान पड़ता था कि महीनों से वह किसी बीमारी में फँसा हुआ है। करुणारस के पूर्णावतार को अपने आप में धारण करते हुए बड़े ही कष्टपूर्ण हाव भाव के साथ दुःख भरे शब्दों में दोनों हाथों को मेरे सामने थोड़ा आगे करके और कुछ फैलाते हुए उसने कहा,

"महाशय जी क्या कहें! कुछ दिन पूर्व इन्फ्लुएन्जा की बीमारी बड़े जोरों पर थी। आप जानते हैं कि रोज लगभग चार-पांच सौ मुर्दे पड़ते थे।"

मैंने सोचा कि सम्भवतः इसी बीमारी में इसका युवा पुत्र, छोटा या बड़ा भाई, पिता या चाचा जो कि घर का कारोबार संभालने वाला था, जाता रहा होगा और इसी लिये यह व्यथित है। मैं इन विचारों में गुँथा हुआ था कि उसने अपना भाषण जारी रखा।

"इस घाट पर ३० या ४० अर्थियां आ ही जाती थीं। व्यापार अच्छा चल रहा था। तीन साढ़े तीन मन लकड़ी बिक जाती थी। अब क्या है? दिन भर मक्खियाँ मारता बैठता हूँ। मुश्किल से दो चार मुर्दे आते हैं। परिणाम यह है कि चार दस मन से ऊपर व्यापार नहीं होता। किधर तीन साढ़े तीन सौ मन! और किधर चार दस मन। आप ही हमारे हाल का अंदाजा लगा सकते हैं।"

इस स्वार्थी भावना को देख कर मैं दंग रह गया। श्मशान में लकड़ी की दूकान लगा कर बैठा हुआ यह लक्कड़हारा अपने भाइयों की मौत में अपना लाभ देख रहा है। उसके हृदय में वैराग्य की या परमार्थ की कोई भावना नहीं क्योंकि उसका कार्यस्थल श्मशान है। श्मशान में होने के कारण हँसना कठिन था, परन्तु उस लक्कड़हारे की स्वार्थी वृत्ति को देख कर मेरे मन में एक ही प्रश्न उठा "हँसूँ या रोऊँ?"

लक्कड़हारे के दाम चुका दिये गये थे, ब्राह्मणों की दक्षिणा भी चुका दी गई थी। सब व्यवसाय यथाविधि किये जा रहे थे। चिता निस्तेज हो रही थी। लोगों के चेहरों पर भी उदासी, क्लांति और म्लानता कम होती जा रही थी। श्मशान से हमारे लौटने का समय हो चुका था। सब के सब एक एक करके उठे और फाटक की तरफ रुख करके जमा होने लगे। कुछ बाहर जा चुके थे, कुछ अभी फाटक के अन्दर थे। स्वर्गीय राय छोटेलाल के सम्बन्धी मेरे पीछे थे। अभी हम लोग फाटक तक नहीं पहुँचे थे कि श्मशान के वे नौकर, जिन्होंने चिता की लकड़ियों को जमाया था और चिता को सुलगाया था हमारे सम्मुख आ कर और झुक-झुक कर सलाम करने लगे। स्पष्ट था कि वे कुछ चाहते हैं। उनका इस प्रकार से सलाम करना इस बात का द्योतक था कि उनकी कुछ

अभिलाषा है। मैने पूछा,

"भाई तुमको क्या कहना है?" अत्यन्त नम्र भाव से उन्होंने उत्तर दिया,

"कुछ नहीं हुजूर! हमारा इनाम भी मिल जाना चाहिए।"

मृत्यु जैसी दुःखद वार्ता के बाद श्मशान में भी इनाम मांगने वाले कोई व्यक्ति होंगे इसकी कभी कल्पना भी नहीं हो सकी थी। न्यायालय में देखा गया है कि चाहे कोई मुकदमा हारे या जीते अदालत के चपरासी का इनाम निश्चित रहता है। श्मशान पर काम करने वाले यह भी विचित्र कर्मचारी थे कि चतुराई से चिता रची जाने के बदले में मृतात्मा के संबन्धियों से इनाम की याचना कर रहे थे। उनकी इस ढिठाई को देख कर हममें से एक कह उठा।

"बेवकूफो! जरा शरम करो। क्या यह जगह इनाम मांगने की है?" उन मजदूरों ने कुछ उत्तर देने के स्थान पर अपने सलाम के वेग को बढ़ा दिया। मैंने भी देखा कि अधिक बात बढ़ाना निरर्थक है और लक्कड़हारे का उत्तर अभी मेरे कानों में गूँज ही रहा था मैंने सोचा,

"इनाम का मांगना चपरासी, मजदूर और प्यादों के लिये एक व्यवहार की बात है। यह ठहरे श्मशान के चपरासी। अब यह यदि इनाम मांगना चाहें तो श्मशान के बाहर कहां मांग सकते हैं और मृत्यु के अतिरिक्त दूसरी कौनसी घटना को अपनी मांग का लक्ष्य रख सकते हैं।"

केवल इस लिये कि उनसे पीछा छुड़ाया जाय मैंने अपने मुँशी से उन्हें एक रुपया देने का इशारा किया। मेरी अनुमति पाते ही मुँशी ने एक रुपये का नोट उन्हें दे दिया। किन्तु आश्चर्य की बात है कि रुपये का नोट पा कर भी वे लोग हमारे मार्ग से नहीं हटे। प्रत्युत कुछ और सामने आ कर उन्होंने हमारे मार्ग को रोक लिया तथा अधिक वेग के साथ और अधिक झुक-झुक

कर वे हमें प्रणाम करने लगे । मैंने समझा कि इनाम के मिल जाने के कारण वे अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं । मैंने सविनय निवेदन किया,

"कृतज्ञता की ऐसी कोई बात नहीं है । आप लोगों ने भी तो काम किया था, इसीलिये इनाम दे दिया गया है । अब कृपा करके आप लोग मार्ग छोड़ दीजिए । हमें बाहर जाने दीजिये ।"

मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न था कि वहां इनाम के दिये जाने पर कृतज्ञता के प्रकट किये जाने का कोई प्रश्न ही नहीं था । वे कह रहे थे,

"क्या हुजूर ! एक ही रुपया ! भला ऐसा भी कभी हो सकता है !" राय छोटेलाल के संबन्धियों की तरफ इशारा करते हुये उनमें से एक ने कहा,

"ऐसे धनी मानी बड़े लोगों के घरों में क्या रोज रोज मौत होती है । महीनों में एकाध समय ऐसी अर्थी आती है जब कि हमें कुछ अधिक मिलने की आशा रहती है । ऐसे दिन भी यदि एक ही रुपया मिले तो हमारी जिन्दगी किस प्रकार चले । बस हुजूर ! दस रुपये का हुक्म हो जाना चाहिए ।"

चिता रचने वालों को दस रुपये का नोट दे कर उनसे पीछा छुड़ाया और हम सब शनैः शनैः श्मशान के फाटक से बाहर आ गये । लोगों के चेहरों पर श्मशान वैराग्य के चिह्न मिटते से जा रहे थे । इसकी प्रतीति प्रारंभ हो गयी थी कि श्मशान प्रतिदिन के कार्यों का कार्यक्षेत्र न होने से वहां का जीवन और विचार सब बनावटी थे । वास्तव में श्मशान भूमि के फाटक के बाहर संसार असार नहीं अपितु सारवान है । हर मनुष्य के लिये वहां कोई ध्येय है, उद्देश्य है और कर्तव्य है । सबके सब आपस में खुल कर बातें करने लग गये थे । किसी के मुख पर पहले सी उदासीनता न थी और न किसी के मस्तिष्क में यह विचार था कि सबको एक रोज यहीं आना है । कोई रुई का भाव पूछ

रहा था तो कोई होटल का पता पूछ रहा था। कोई ट्रेन का समय मालूम कर रहा था तो कोई कचहरी का रास्ता, कोई सिनेमा घर के बारे में जांच कर रहा था। किसी को गायिका और और अभिनायिका की चर्चा सूझ रही थी तो किसी को घुड़दौड़ के परिणाम की चिन्ता हो रही थी। सारांश यह कि हर व्यक्ति अपने विषय में मस्त था। जिनके पास सवारी थी वह अपनी सवारी में बैठ कर जा रहे थे और जिनके पास सवारी नहीं थी वे देख रहे थे कि किसकी सवारी में कितनी सीटें खाली हैं और कौन किसको बिठा लेने के लिए तैयार है। जिनको किसी की सवारी में स्थान नहीं मिला वह यह कहते भी शरमा नहीं रहे थे, "कम्बख्त समय देख कर भी नहीं मरा जो हमें दोपहर की तपती धूप में वापस होना पड़ रहा है।" इतने में ही मेरे एक नौजवान दोस्त मेरी तरफ लपके। उनके चेहरे पर कुछ लज्जा और कुछ आशा थी, कुछ संकोच और कुछ उमंग की लहर दिखाई दे रही थी। वे बड़ी जल्दी में थे। एक क्षण का भी विलम्ब उन्हें दूभर हो रहा था। मुझे उनकी इस जल्दी का कारण समझना कठिन हो रहा था। मैंने समझा कि मुझे जाते हुए देख कर वे जल्दी से मेरे साथ हो लेना चाहते हैं। किन्तु नहीं; उन्होंने अपनी जेब से एक कागज निकाला और बगल में खड़ी हुई गाड़ी की ओर इशारा करते हुए गाड़ी में बैठे हुए चीफ जस्टिस की सेवा में उस कागज को समर्पित करने की प्रार्थना की। चीफ जस्टिस की मोटर स्टार्ट हो चुकी थी अतः उस कागज को पढ़ने का अवसर मेरे पास नहीं था। मैं अपने नौजवान दोस्त की उद्विग्नता से अत्यन्त प्रभावित था स्पष्ट भी है कि जब वे प्रार्थना पत्र श्मशान भूमि तक लाये थे तो अवश्य ही उनका कार्य अत्यन्त महत्व पूर्ण रहा होगा। मैं भी दौड़ता हुआ, चीफ जस्टिस की मोटर का पहिया धर्ती पर फिरने से पूर्व

ही उनके पास पहुँचा और अपने नौजवान दोस्त का प्रार्थना-पत्र उनके हस्तगत कर दिया। चीफ जस्टिस ने उस पत्र को आदि से अन्त तक पढ़ा और फिर बड़े सहानुभूति पूर्ण स्वर में कहा।

"मुझे अत्यन्त खेद है कि आपके मित्र बहुत ही देर कर के आये हैं।" इतना कहते हुए उन्होंने वह प्रार्थना पत्र मेरे हाथ में वापस दे दिया। मैंने भी उसको आदि से अन्त तक पढ़ा। बात यह थी कि मेरे मित्र एक नौजवान वकील थे। राय छोटेलाल की मृत्यु के कारण मुन्सफी का एक स्थान रिक्त हुआ था। मेरे मित्र ने चीफ जस्टिस साहब को इसी रिक्त स्थान पर स्वतः की नियुक्ति के लिये प्रार्थना पत्र दिया था। मैंने इसे पढ़ कर ज्यों ही सिर ऊपर उठाया तो चीफ जस्टिस ने अपने कथन की शृंखला को यों बढ़ाया।

"मैं मजबूर हूँ, मुझे खेद है, आपके मित्र बहुत देर कर के आये हैं। राय छोटेलाल की अर्थी उठने के पूर्व ही जब मैं उनके मकान पर गया था तब ही मेरे पास तीन प्रार्थना पत्र आ चुके थे और उनमें से एक प्रार्थी को चुन कर मैंने उसकी नियुक्ति की आज्ञा भी दे दी है।" उन्होंने हँसते हुए अपना कथन यों समाप्त किया, "अपने मित्र से कहिए कि भविष्य में वे इतना विलम्ब न किया करें।"

मेरी और मेरे मित्र की आँखों के सामने इस अकल्पित निराशा के कारण अन्धेरा सा छा गया। मैं कभी सोच भी नहीं सकता था कि अर्थी उठने से पूर्व भी रिक्त स्थान के लिये प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किये जा चुके होंगे मैंने दोनों हाथों से अपनी आँखें मलीं और उन्हें खोलने का प्रयत्न किया। उस समय तक चीफ जस्टिस की गाड़ी मेरे सामने से जा चुकी थी; परन्तु उस नौजवान मित्र का वह चित्र अर्थपूर्ण दिखाई दे रहा था प्रार्थी के चेहरे पर

लज्जा थी क्योंकि वह सोच रहा था,

"हाय ! मेरा दुर्भाग्य कि मुझे श्मशान भूमि पर अपना प्रार्थना-पत्र देना पड़ रहा है ।

उस समय उसके चेहरे पर आशा थी क्योंकि उसे विश्वास था कि सब से पहला प्रार्थना-पत्र उसीका होगा । साथ ही उसके चेहरे पर उमंग की आभा थी क्योंकि वह समझ रहा था कि प्रार्थना-पत्र को पेश करने के लिए सौभाग्य से मुझसा व्यक्ति उसे प्राप्त हो गया था । मैंने एक बार अपने मित्र की धृष्टता पर विचार किया कि यह व्यक्ति श्मशान भूमि पर अपना प्रार्थना पत्र लाने का साहस कर सका । परन्तु मेरा विचार उसके प्रतिद्वन्दियों की चतुराई और समयसूचकता पर गया जिन्होंने अर्थी के उठाये जाने की प्रतीक्षा नहीं की । मैंने सोचा मनुष्य स्वार्थी है पर इतना नीच नहीं कि राय छोटेलाल की मृत्यु के पूर्व ही उनकी रुग्णावस्था में रिक्त होने वाले स्थान के लिए प्रार्थनापत्र देने का साहस करे । यह सोचते सोचते मैं फिर से एक बार कह उठा :–

"हँसूँ या रोऊँ ?"

—विनायकराव विद्यालङ्कार

पाँच मिनट !

बस, पाँच मिनट ! वह सींखचों के उस पार हथकड़ियों से जकड़ा हुआ और मैं—हाय भाग्य ! मैं पुलिस के पहरे में बाहर खड़ी—काँपती हुई, थरथराती हुई ! कैसी लाचारी है। बस, पाँच मिनट की मुलाकात थी—देखते-देखते समाप्त हो गयी !

× × ×

पिछली बातों की याद क्यों करूँ—वे छुरी बन कर मेरे हृदय में चुभ जाती हैं। पिछली गाथा किसे सुनाऊँ—कोई मन लगा कर सुननेवाला नहीं; यदि कोई सुनता है भी तो अनमना हो कर, बेमन से। सुन कर कहता है—"बहिन, तुम्हारा भाग्य ! ईश्वर को याद करो।" हाय—दुर्भाग्यग्रस्त अभागों को कभी ईश्वर ने सहायता नहीं पहुँचायी, डूबते हुए को ईश्वर ने कभी सहारा नहीं दिया, भूखों को कभी ईश्वर ने रोटी नहीं दी, रोनेवालों के आँसू पोछने वह कभी नहीं आया। वह स्वर्ग के नन्दन-वन में बिहार करनेवाला है। वह अपनी स्त्री का आज्ञाकारी है। जिस पर लक्ष्मी रीझती हैं, उसी पर ईश्वर भी अनुग्रह करता है। मुझ दरिद्र से उसका क्या नाता ? गरीबों का ईश्वर है—उसका दुर्भाग्य ! मैं दुर्भाग्य की पाली, बदकिस्मती की लाड़िली, ईश्वर को क्यों पुकारूँ ? पुकारती भी हूँ, तो अपने दुर्भाग्य को। वह आता है और एक-न-एक नये पहाड़ सिर पर ठेल कर खिलखिला पड़ता है, मगन हो जाता है, थिरक उठता है !

एक बार दुर्भाग्य को पुकारा तो एक बेकार—गरीब ग्रेजुएट से गठबन्धन कराके वह बगलें बजाने लगा, दूसरी बार उसे पुकारा तो दो बच्चे हुए, तीसरी बार पुकारा तो मेरा अपना, जीवन-सर्वस्व, डूबते का सहारा तिनका, खून के जुर्म में जेल चला गया—फाँसी की सजा हो गयी। सब समाप्त हो गया; अब उसे क्यों पुकारूँ?

यदि गरीबी ही समस्त अपराधों की जड़ है तो दे दो उसे फाँसी, उसे गोली से उड़ा दो, कुत्तों से नुचवा डालो, पर मैं कहूँगी—वह खूनी नहीं, दरिद्र है; अपराधी नहीं, भूखा है; हत्यारा नहीं, विपदग्रस्त है। उसे पापी मत कहो, भूखा कहो।

क्या किया था उसने? कौनसा पाप किया था? कुछ नहीं—कुछ नहीं! फकत पापी पेट के लिये, दरिद्र परिवार के लिये, अभागे बच्चों के लिये कुछ प्रयत्न किया था। कानून ने इसी प्रयत्न को, दुर्भाग्य ने इसी चेष्टा को 'खून' का अपराध बना दिया, फाँसी की व्यवस्था कर दी। परवाह नहीं—मैं साहस पूर्वक कहती हूँ—परवाह नहीं; वह मर जाय—फाँसी पर लटक जाय, पर मुझे सन्तोष है, वह अपराधी नहीं है। सौ बार, हजार बार कहती हूँ—पापी नहीं है; वह दरिद्र है, भूखा है, अभागा है, पर है मनुष्य।

भूख के मारे कुसंग में पड़ गया। चोरियाँ कीं, डाके डाले, लूटा-मारा, सब कुछ किया, पर पेट के लिये ही नैतिक दृष्टि से वह अपराधी है, पापी है, खूनी है, चोर है, डाकू है। पर जरा सोचो तो—क्या केवल संसार में नैतिकता गरीबों के ही बाँटे पड़ी है? रामधन तेली गाँव-भर के खेतों को, कर्ज देकर हथिया रहा है—सैकड़ों बच्चे मरे हैं, उसके सूद की तीखी धार में पड़कर। यह पाप नहीं है, और पाप है मेरे गरीब पति का एक छोटा-सा अपराध!

खैर, उसे संसार से हटा दो, पर इससे क्या पाप का द्वार बन्द हो जायगा ? कभी नहीं। मैं कहती हूँ—"हर्गिज नहीं।"

२

कल मुझे एक पत्र मिला—सरकारी ! मेरा पति मुझसे मुलाकात करना चाहता है—अन्तिम मुलाकात। वह परसों फाँसी पा जायगा। उसकी अंतिम इच्छा है—अपने बच्चे को देखेगा, स्त्री को देखेगा। मैं अपने पति के अंतिम दर्शन करने चली। चली अपने प्राणेश्वर की जीवित लाश को देखने। मैं जिसे देखने चली, उसके सम्बन्ध में यह जानती थी कि उसके सिर पर काल की छाया पड़ चुकी है, उसके गले के लिये रस्सी बँट चुकी है, उसके लिये कफ़न खरीदा जा चुका है—पर वह आज जीवित है, हमारी और आपकी तरह—आश्चर्य !

आप सोचिये—आपका सर्वाधिक प्रिय काल का ग्रास बना बैठा है, आप उसे देखने जाते हैं। आज जिसे आप देख रहे हैं, कल सुबह उसकी लाश आपको मिल जायगी, जिसका गला रस्सी के फन्दे से घोंट डाला गया है। मैं कानून को दोषी नहीं ठहराती, मैं न्याय पर आक्रमण नहीं करती, पर मनुष्यता से पूछती हूँ—"बोलो बहिन ! एक बार बोलो !" न्याय मूक है, बधिर है, अन्ध है, उसके सामने जिसको उपस्थित किया जायगा वह उसकी परीक्षा कर लेगा, पर तुम तो हृदय रखती हो—मेरी ओर से कुछ तो बोलो !"

मैं चली—अपनापन बिसार कर चली। सोचा, एक बार चरणों को चूम लूँगी, एक बार उनकी छाती में सिर छिपा कर रोऊँगी और पूछूँगी—"देव, मेरी प्रतीक्षा भी करोगे ? भूल तो नहीं जाओगे ? इसी अभागी ने तुम्हारी चढ़ती हुई जवानी में आग के दहकते हुये अंगारें रख दिये, तुम्हारे यौवन के

प्याले में विष घोल दिया। क्षमा कर देना, भूल जाना, यह तुम्हारा बच्चा है; इसे दुलार लो—एक बार पितृस्नेह के शीतल जल से इसे अभिषिक्त कर दो। यह तुम्हारी धरोहर है।" मैं चल पड़ी जेल की ओर। गोद में बच्चा था—'गोपाल!' बोला अम्माँ, कहाँ जाती है?" क्या उत्तर देती? क्या कह कर उस मासूम को समझाती? कहा—"बेटा, बाबूजी को देखने नहीं चलोगे? वे तुम्हें देखना चाहते हैं।"

गोपाल प्रसन्न हो कर बोला—"अम्माँ, बहुत दिनों से बाबूजी नहीं आये। खिलौना माँगूँगा; पैसे माँगूँगा—मुन्नी को एक भी खिलौना नहीं दूँगा। मेरे बाबूजी हैं—वे मुन्नी के कौन होते हैं?" मेरा हृदय शतधा विभक्त हो गया। हाय रे अभागा बच्चा! तेरे बाबूजी काल की गोद में बैठे हैं, जीवन के दिन उंगलियों पर गिन रहे हैं। पिंजड़े में बन्द हैं। साहस करके बोली—"बेटा, भगवान की याद करो।"

गोपाल मेरा आँचल खींच कर बोला—"बाबूजी कब आवेंगे? साथ लेकर आऊँगा। तुम मना मत करना—वे मेरे लिए छोटी-सी साइकिल लावेंगे—जैसी जयगोविन्द की है। अम्माँ, वह मुझे साइकिल छूने नहीं देता। कहता है, टूट जायगी। क्या छूने से साइकिल टूट जाती है? बड़ा बदमाश लड़का है। मैं भी अ:नी साइकिल उसे छूने नहीं दूँगा। बाबूजी साइकिल खरीद देंगे न अम्माँ? मुन्नी को भी साइकिल छूने नहीं दूँगा—मेरी स्लेट तोड़ दी उसने। मना करने पर दाँत काटने लगती है। मैं बाबूजी से कह दूँगा।"

३

जेलर ने आज्ञा दे दी—"ले जाओ।"

एक सिपाही ले कर साथ चला। दोनों ओर कोठरियाँ—मोटे-मोटे सींखचे

और उसमें बन्द ईश्वर की श्रेष्ठ कला के श्रेष्ठतम नमूने—मनुष्य ! एक-दो-चार नहीं, सौ, पाँच सौ। संसार में अकेले मैं ही अभागी नहीं हूँ—हज़ारों हैं, लाखों हैं।

मैं एक अँधेरी कोठरी के सामने खड़ी की गयी। गोपाल डर के मारे मेरे पैरों में लिपट कर खड़ा हो गया। वह काँप रहा था–सिकुड़ा जाता था !

सिपाही ने पुकारा—"प्रकाश !"

मैंने चारों ओर देखा, यह फाँसी-घर है। अपने जीवन की अंतिम घड़ियों के क़ैदी यहीं रहते हैं। इस घर को यदि बोलने की शक्ति प्राप्त हो जाय तो संसार को एक ऐसा साहित्य पढ़ने को मिले, जिसकी तुलना में दूसरा साहित्य ठहर नहीं सकता। इस कोठरी की ईंट ईंट ऐसे ही लोगों की आहों से पकी हैं; भट्टे की आग तो निमित्त मात्र ही थी। इसके फ़र्श पर कितने आँसू सूखे होंगे, उन्हें यदि जमा किया जाय तो संसार के आधे सभ्यताभिमानी उसमें डूब जायँ। इस कोठरी के भीतर से आवाज हुई—झन, झन, झन ! एक दुबला, थका हुआ, हताश, अर्धमृत युवक दरवाजे पर आ कर खड़ा हो गया। यही था उस अन्धकूप में रहनेवाला 'प्रकाश'—मेरे अन्धकारमय भविष्य का अंतिम प्रकाश, अपने गोपाल का प्रकाश और प्यारी बच्ची मुन्नी का प्रकाश !

सिपाही ने कहा—"पाँच मिनट का समय है; बातें कर लो। हाँ जल्दी, देर न हो।"

मुझे दूर हट कर खड़ा होने का हुक्म हुआ। म क़ैदी को कुछ दे न दूँ, यह भय था। मैंने कहा—"गोपाल, बाबूजी को प्रणाम करो।" गोपाल हक्का बक्का, बच्चा गोपाल—भूमि से सिर लगा कर प्रणाम करने लगा। मैंने भी प्रणाम किया। वह धुँधले प्रकाश में खड़ा था।—उस पार ! रुँधे हुए

कण्ठ से वह बोला—"सु···खी...र...हो। यह अन्तिम भेंट है, अन्तिम आशीर्वाद है, आखिरी बातचीत है। बस, कल सुबह आकर मेरी लाश ले जाना—मैंने जेलर को कह दिया है।" मैं सिर थाम कर बैठ गयी।

गोपाल बोला—"बाबूजी चलो न।" मानो किसी ने मेरे हृदय पर कस कर एक मुक्का मार दिया—कैसा भोलाभाला आग्रह है। वह बोला—'बेटा, मैं दूसरी दुनिया का यात्री हूँ, तुम पढ़ना। अम्माँ को कष्ट न देना।" मैंने देखा कि उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। वह छड़ पकड़ कर खड़ा है—पत्थर की तरह। गोपाल ने फिर कहा--"बाबूजी, मुन्नी रोती है। उसने मेरी स्लेट तोड़ दी। दूसरी स्लेट खरीद दो।"

उसने एक लम्बी साँस छोड़ कर कहा—"सुनती हो-गोपाल की स्लेट टूट गयी है। इसे एक स्लेट खरीद दो।"

मैं क्या बोलती; मुझे तो ऐसा ही जान पड़ा कि मानों मेरे दोनों कान बहरे हो गये; आँखों के आगे अन्धेरा छा रहा है।

उसने फिर कहा--"अच्छी तरह रहना; बच्चों को प्यार से रखना और गोपाल को पढ़ाती रहना। मैं तो अब चला; पर गोपाल को अपनी थाती रक्खे जाता हूँ। चिन्ता मत करो। जो होना था, हो कर ही रहा।"

मैं बोली--"और···और··· ।"

कण्ठ रुँध गया—आँखों से मानो कलेजे का खून आँसू बन कर गिरने लगा।

सिपाही बोला—"बस, चलो पाँच मिनट हो गये!"

वह बोला--"अच्छा, बिदा! एक बार मेरी ओर से गोपाल को चूम लो—मैं देख लूँ। परमात्मा तुम्हें धैर्य दें। अगले जन्म में मिलूँगा।"

सिपाही गुर्रा कर बोला--"जल्दी करो; समय समाप्त हो गया; चलो।"

--मोहनलाल महतो 'वियोगी'

कदम्ब के फूल

"भौजी लो मैं लाया।"

"सच ले आए ? कहाँ मिले ?"

"अरे ! बड़ी मुश्किल से ला पाया, भौजी !

"तो मजदूरी ले लेना।"

"क्या दोगी ?"

"तुम जो माँगो।"

"पर मेरी माँगी हुई चीज मुझे दे भी सकोगी ?"

"क्यों न दे सकूँगी ? तुम मेरी वस्तु मेरे लिये ला सकते हो तो क्या मैं तुम्हारी इच्छित वस्तु तुम्हें नहीं दे सकती ?"

"नहीं भौजी न दे सकोगी, फिर क्यों नाहक कहती हो ?"

"अब तुम्हीं न लेना चाहो तो बात दूसरी है, पर मैंने तो कह दिया कि तुम जो माँगोगे वही दूँगी।"

"अच्छा अभी जाने दो, समय आने पर माँग लूँगा।" कहते हुए मोहन ने अपने घर की राह ली। दूर से आती हुई भामा की सास ने मोहन को कुछ दोने में लिए हुए घर के भीतर जाते हुए देखा था। किन्तु वह ज्योंही नजदीक पहुँची मोहन दूसरे रास्ते से अपने घर की तरफ जा चुका था। वे मोहन से कुछ पूछ न सकीं; पर उन्होंने यह अपनी आँखों से देखा था कि मोहन कुछ दोने में लाया है, किन्तु क्या लाया है यह न जान सकीं।

२

घर आते ही उन्होंने बहू से पूछा—"मोहन दोने में क्या लाया था ?"

भामा मन ही मन मुस्करा कर बोली-–"मिठाई !"

बुढ़िया क्रोध से तिलमिला कर बोली--"इतना खाती है, दिन भर बकरी की तरह मुँह चला ही करता है, फिर भी पेट नहीं भरता ? बाज़ार से भी मिठाई मंगा मंगा कर खाती है! अभी मैं न देखती तो क्या तू कभी बतलाती ?"

भामा-–(मुस्कराते हुए) "तो बतलाती क्यों ? कुछ बतलाने के लिए थोड़े ही मँगवाई थी ?"

"क्यों, क्या मैं घर में कोई चीज़ नहीं हूँ ? अपने लिए तो मिठाई के लिए पैसे हैं। मैं चार पैसे दान दक्षिणा के लिए माँगू तो सदा मुँह से नहीं निकलती है। तेरा आदमी है तो मेरा बेटा है। क्या उसकी कमाई में मेर कोई हक़ ही नहीं। मुझे तो दो बार सूखी रोटी छोड़ कर कुछ भी न नसीब हो और तू मिठाई मंगा-मंगा के खाए। कर ले जितना तेरा जी चाहे। भगवान तो ऊपर से देख रहा है। वह तो सज़ा देगा ही।"

(मुस्कराते हुए) "क्यों कोस रही हो माँ जी ! मिठाई एक दिन खा ही ली तो क्या हो गया, अभी रखी है तुम भी ले लेना।"

"चल रहने दे। अब इन मीठे पुचकारों से किसी और को बहकाना। मैं तेरे सब हाल जानती हूँ। दुनियाँ में बहुत सी औरतें देखी हैं; पर सब तेरे तले तले।"

(मुस्कराते हुये) "सब मेरे तले तले न रहेंगी तो करेंगी क्या ? मेरी बराबरी कर लेना मामूली बात नहीं है। मैं ऐसी वैसी थोड़े ही हूँ।"

चल, चल, बहुत बड़प्पन न बघार, नहीं तो सब बड़प्पन निकाल दूँगी।"

भामा अब कुछ चिढ़ गई थी, बोली—"बड़प्पन कैसे निकालोगी माँजी, क्या मारोगी ?" माँजी को और भी क्रोध आ गया वह बोली – मारूँगी भी तो मुझे कौन रोक लेगा ? मैं गंगा को मार सकती हूँ तो क्या तुझे मारने में कोई मेरा हाथ पकड़ लेगा ?"

"मारो, देखूँ कैसे मारती हो ? मुझे वह बहू न समझ लेना जो सास की मार चुपचाप सह लेती हैं।"

"तो क्या तू मुझे मारेगी ? बाप रे बाप ! इसने तो घड़ी भर में मेर पानी उतार दिया। मुझे मारने को कहती है। आने दे गंगा को मैं कहती हूँ कि भाई तेरी स्त्री की मार सह कर अब मैं घर में न रह सकूँगी। मुझे अलग झोपड़ी डाल दे मैं वहीं पड़ी रहूँगी। जिस घर में बहू सास को मारने के लिए खड़ी हो जाय वहाँ रहने का धरम नहीं। यह कहते कहते माँजी जोर-जोर से रोने लगीं।"

भामा ने देखा कि बात बहुत बढ़ गई, अतः वह बोली—"मैंने तुम्हें मारने को नहीं कहा माँजी ! क्यों झूठमूठ कहती हो ! हाँ, मैं मार तो चुपचाप किसी की न सहूँगी। अपने माँ-बाप की नहीं सही तो किसी और की क्या सहूँगी ?"

"चुपचाप न रहेगी तो मुझे भी मारेगी न ? वही बात तो हुई। यह मखमल में लपेट-लपेट कर कहती है तो क्या मेरी समझ में नहीं आता।"

माँजी के जोर-जोर से रोने के कारण आसपास की कई स्त्रियाँ इकट्ठी हो गईं। कई भामा की तरफ़ सहानुभूति रखने वाली थीं, कई माँजी की तरफ़; पर इस समय माँजी को फूट-फूट कर रोते देख कर सबने भामा को ही भला-बुरा कहा। सब माँजी को घेर कर बैठ गईं। भामा अपराधिनी की तरह घर के

भीतर चली गई। मामा ने सुना माँजी आसपास बैठी हुई स्त्रियों से कह रही थीं—"आप तो दोना भर-भर मिठाई मंगा-मंगा कर खाती है। और मैंने कभी अपने लिए भी कहा तो फ़ौरन ही टका-सा जवाब दे देती है। कहती है पैसा ही नहीं है। इसके नाम से पैसे आ जाते हैं और मेरे नाम से कंगाली छा जाती है। किसी भी चीज़ के लिए तरस तरस के, मांग मांग के जीभ घिस जाती है, तब जी में आया तो ला दिया नहीं तो कुत्ते की तरह भूँका करो। यह मेरा इस घर में हाल है। आज भी दोना भर मिठाई मंगवाई है, मैंने ज़रा ही पूछा तो मारने के लिए खड़ी हो गई। कहती है, मेरे आदमी की कमाई है, खाती हूँ, किसी के बाप का खाती हूँ क्या? उसका आदमी है तो मेरा भी तो बेटा है, उसका १२ आने हक़ है तो मेरा ४ आने तो होगा ही।"

पड़ोस की एक दूसरी बुढ़िया बोली—"राम राम, यही पढ़ी लिखी होशियार हैं। पढ़ी-लिखी है तो क्या हुआ अक़ल तो कौड़ी बराबर भी नहीं है। तुमने नौ महीने पेट में रखा बहिन! तुम्हारा तो सोलह आने हक़ है। बहू को, बेटा माँ के लिए लौंडी बना कर लाता है यह तुम्हारे पैर दबाने और तुम्हारी सेवा करने के लिए है। हमारा बन्दन तो जब तक बहू मेरे पैर नहीं दबा लेती, उसे अपनी कोठरी के अन्दर ही नहीं आने देता।"

"अपना ही माल खोटा हो तो परखनेवाले का क्या दोष, बहिन? बेटा ही सपूत होता तो बहू आज मुझे मारने दौड़ती।"

३

गंगाप्रसाद गांव की प्रायमरी पाठशाला के दूसरे मास्टर की जगह के लिए उम्मीदवार थे। साढ़े सत्रह रुपए माहवार की जगह के लिए बिचारे दिन भर दौड़-धूप करते, इससे मिल, उससे मिल, न जाने किसकी-किसकी

खुशामद करनी पड़ती थी, फिर भी नौकरी पाने की उन्हें बहुत कम उम्मीद थी। इधर वे कई मास से बेकार बैठे थे। भामा के पास कुछ जेवर थे जो हर माह गिरवी रक्खे जाते थे और किसी प्रकार काट कसर करके घर का खर्च चलता था। भामा पैसों को दांत तले दबा कर खर्च करती। सास और पति को खिला कर स्वयं आधे पेट ही खा कर पानी से ही पेट भर कर उठ जाती। कभी दाल का पानी ही पी लिया करती। कभी शाक उबाल कर ही पेट भर लिया करती। रुपये-पैसों की तंगी के कारण घर में प्रायः रोज़ ही इस प्रकार कलह मची रहती।

जब गंगाप्रसादजी दिन-भर की दौड़-धूप के बाद थके-हारे घर लौटे तब शाम हो रही थी, आंगन में उसकी माँ उदास बैठी थीं। बेटे को देखा तो नीची आँख कर ली, कुछ बोली नहीं। गंगाप्रसाद अपनी माँ का बड़ा आदर करते थे। उनका बड़ा ख्याल रखते थे। जिस बात से उन्हें ज़रा भी कष्ट होता वह बात वे कभी न करते थे। माँ को उदास देख कर वे माँ के पास जाकर बैठ गये, प्यार से माँ के गले में बाहें डाल दीं; पूछा—"क्यों माँ! आज उदास क्यों है? क्या कुछ तबियत खराब है?"

"नहीं, अच्छी है।"

"कुछ तो हुआ है माँ! आज तू उदास है।"

अब माँजी से न रहा गया, फूट-फूट के रोने लगीं, बोलीं—"कुछ नहीं मैं आदमी-औरत में लड़ाई नहीं लगवाना चाहती बस इतना ही कहती हूँ कि अब मैं इस घर में न रह सकूँगी, मेरे लिये अलग एक झोपड़ी बनवा दे वहीं पड़ी रहूँगी। जी में आवे तो खरच भी देना नहीं तो माँग के खा लूँगी।"

"क्यों माँ! क्या कुछ झगड़ा हुआ है? सच सच कहना!"

"आज ही क्या ? यह तो तीसों दिन की बात है ! तेरी घरवाली ने मोहन से मिठाई मँगवाई। वह दोना भर मिठाई मेरे सामने लाया। मैं ज़रा पूछने गई तो कहती है—हाँ मँगवाती हूँ, खाती हूँ अपने आदमी की कमाई खाती हूँ, कुछ तुम्हारे बाप का तो नहीं खाती ? जब मैंने कहा कि तेरा आदमी है तो मेरा भी बेटा है, उसकी कमाई में मेरा भी हक़ है तो कहती है कि तुम्हारा हक़ जब था तब था...अब तो सब मेरा है, ज्यादा बोलोगी तो मार के घर से निकाल दूँगी। तो बाबा तेरी औरत है, तू ही उसकी मार सह, मैं माँग के पेट भले ही भर लूँ पर बहू के हाथ की मार न खाऊँगी।"

गंगाप्रसाद अब न सह सके बोले—"वह तुझे मारेगी माँ ! मैं ही न उसके हाथ पैर तोड़ कर डाल दूँगा।"—कहते हुए वे हाथ की लकड़ी उठा कर बड़े गुस्से से भीतर गये। भामा को डाँट कर पूछा—"क्या मँगवाया था तुमने मोहन से ?"

गंगाप्रसाद के इस प्रश्न के उत्तर में "कदम्ब के फूल थे, भैया !" कहते हुए मोहन ने घर में प्रवेश किया। तब तक भामा ने दोना उठा कर गंगाप्रसाद के सामने रख दिया था। दोने में आठ, दस पीले-पीले-गोल-गोल बेसन के लड्डुओं की तरह कदम्ब के फूलों को देख कर गंगाप्रसाद को हँसी आ गई।

मोहन ने दोने में से एक फूल उठा कर कहा—"कितना सुन्दर है यह फूल भौजी !"

—श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

प्रेम के लिए

सन् १९४२ के तूफ़ानी दिन ! सितम्बर बीत चला था ।

अकस्मात् उस छोटे से स्टेशन पर डाक गाड़ी के ठहरने से उसे आश्चर्य हुआ । वह वहाँ चबूतरे जैसे नाम मात्र के प्लेट फार्म पर निरुद्देश्य घूम रहा था । मालगाड़ी अगले स्टेशन से छूट चुकी थी । ऐक्सप्रेस को वहाँ कुछ देर ठहरना था । गाँव की मामूली पुलिस–चौकी पर जैसे ज़िले का बड़ा पुलिस अफ़सर पहुँच गया हो । स्टेशन मास्टर अकेला सकपकाया-सा इधर से उधर चक्कर काट रहा था ।

तीसरे दर्जे के डिब्बे में एक व्यक्ति सवार हुआ । आयु २५ से अधिक न रही होगी । तीन चार मास से हज़ामत न बनने के कारण सिर और दाढ़ी मूँछ के बाल बढ़े हुए थे । सिर के अस्तव्यस्त बालों से उसका मुँह भद्दा-सा लगता था । फटी मिर्जई, घुटनों तक भी धोती, कन्धे पर पड़ी गाढ़े की मैली चादर, चोटी तक ऊँचा लट्ठ, यह सब देख कर किसी को उसके गँवई गांव के साधारण किसान होने में सन्देह नहीं होता था । पंजों से ऊपर आधी पिंडलियों तक भूरी मटमैली धूल जम गई थी । धूल भरे पिंडलियों के छोटे छोटे बाल अजीब से लगते थे । मालूम होता था वह बहुत दूर से पैदल चल कर आया है । पाँव हाथ धोने का अवसर भी नहीं मिला । कुछ क्षण पहले एकाएक

डाक गाड़ी के मिलने से उसे जो प्रसन्नता मिश्रित आश्चर्य हुआ, उसका कोई चिह्न अब शेष न था।

"बिना टिकिट लिये कहाँ घुसे आ रहे हो!"

एक व्यक्ति ऊँचे स्वर में ललकारा। इस ऊँची आवाज़ में उस बात का संकेत नहीं था कि बोलनेवाला व्यक्ति चढ़ने न देगा या चढ़ने पर जबर्दस्ती नीचे उतार देगा। उस के प्रश्न से केवल यह ध्वनि आ रही थी कि तुम चल सकते हो किन्तु हमारी पद-मर्यादा का ध्यान रखना। हम भी कुछ हैं, इनना जान गये तो तुम्हारे चलने में हमें कोई आपत्ति नहीं होगी।

बड़ी बड़ी सुडौल मूछें, गोरा और भरा मुँह, ऊँचे ललाट पर लुप्त प्राय, अस्पष्ट सी भौंहें किसी व्यक्ति को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त थीं। ख़ाकी ड्रेस में गोरा रंग और रक्त की लालिमा निखर कर आकर्षक लगती थी। उस व्यक्ति के कन्धे पर पीतल के दो तीन तारों और राजमुकुट के चिह्न को देख कर नवागन्तुक ने मन ही मन प्रश्न किया, इतना बड़ा पुलीस का अधिकारी तीसरे दर्जे के डिब्बे में सफर क्यों कर रहा है?

"माई बाप! आप की दया चाहता हूँ। इस स्टेशन से पाँच मील दूर मेरी बहिन का ससुराल है। बहिन सख्त बीमार है। ख़बर पा कर मैं यहाँ आया। आज उसे अठवाँसा लड़का हुआ। लड़का चलता बना। बहिन सबेरे से ही अचेत पड़ी है। गाँव की दाई कहती थी सोंठ-अजवायन और पीपल का काढ़ा दिया जाय तो शायद बच सके। बीस झोंपड़ी का गाँव, ये मामूली चीज़ें भी नहीं मिल सकीं। पहिले से मालूम होता तो साथ ही ले आता, अब लेने जा रहा हूँ। बहिन का पुण्य उदय हुआ इस लिये आज डाक गाड़ी भी यहां रुक गई। पैसेंजर में जाता तो रात तक न लौट सकता। अब दोपहर की गाड़ी से

ही आ जाऊँगा। भगवान ने चाहा तो बहन अच्छी हो जायगी। आपके चरणों के प्रताप से मेरी बहिन बच जाय। मैं आपको तकलीफ नहीं होने दूँगा, खड़ा ही चला चलूँगा।"

"हमने तो नहीं कहा कि तुम मत चलो। बड़े दुःखी हो। बैठ जाओ, यहीं नीचे बैठ जाओ।"

उसकी करुण कहानी और दुःखी चेहरे को देख कर पुलिस अफसर का हृदय पसीज गया। ग्रामीण अपनी चादर बिछा कर लेट गया।

गाड़ी ने धक्का दिया और चल पड़ी।

"आप यह समझ लीजिये" पुलिस-अफसर ने पास बैठे एक वृद्ध महाशय को सम्बोधित किया। अपनी पिछली अधूरी बात को शुरू करने के लिये—"काँग्रेस के इस आन्दोलन से हमारे नाकों दम है। न दिन चैन न रात नींद! कल साँझ ही अगले स्टेशन पर गुण्डों ने डाका डाला है। गाँव और स्टेशन की पुलिस चौकी जला-दी गई। तीन चार सिपाहियों की लाशें मिली हैं, कुछ का पता नहीं है। पटवारी का दफ्तर भी आग की भेंट हो गया। जो कुछ मिला गुण्डे उसे ले कर नौ दो ग्यारह हो गये। लोग इसे देश-भक्ति कहें, मैं तो डाका कहता हूँ डाका! इन कामों से देश का क्या भला होगा? तुम पर हुकूमत करते हैं अँग्रेज! अँग्रेजों के आगे तो बस नहीं चलता, और लगे अपने देश भाइयों पर क्रोध निकालने। पुलिस के सिपाही भी उसी देश के हैं, देशवासियों के मारने से क्या कभी देश का भला होगा!"

अफसर की आँखों में सुर्खी आगई थी और सांस कुछ जोर से चलने लगी थी।

नवागन्तुक ग्रामीण इन बातों को सुन सुन कर मन ही मन उद्विग्न हो

रहा था। मन में आया, अच्छा मुँह तोड़ उत्तर दिया जाय, लेकिन वह अपनी स्थिति को जानता था। विवश हो, उसे अपने मुँह की बात निगल जानी पड़ी उसने अपने मन में ही उत्तर दे कर संतोष माना—"जब तुम लोग अपने देशवासियों को गुलाम रखने के लिए चौबीसों घण्टे कमर कसे रहते हो और अपने देश-भाइयों की आजादी छीनने के लिए आज तुम्हारी राइफलें क्षण भर के लिए भी ठण्डी नहीं होना चाहतीं तब हम लोग तुम्हें अपना देशवासी और भाई समझने की भूल कब तक करते रहेंगे? हर आदमी से टैक्स वसूल करने के लिए अँग्रेज तो आता नहीं, और न अँग्रेज ही उन सब लोगों को जेल भेजता है, जो जनता की सेवा करने के कारण तुम्हारी आंखों का काँटा बन जाता है। अँग्रेजी राज को रस पहुँचाने वाली जड़ें तुम्हीं हो। पत्तों को तोड़ने से क्या लाभ? जड़ें काट डाली जाँय तो पेड़ अपने आप सूख जायगा।"

अफसर बिना रुके कहता जा रहा था—

"रात की गाड़ी से वहाँ पुलिस की बड़ी तादाद पहुँच गई है। मैं अब जा रहा हूँ। बहुत सारा काम हो चुका होगा। देखिये हम लोग भी कैसी खबर लेते हैं! चार की जगह चालीस जानें जायँगीं और दस की जगह सौ रुपये रिआया से ही वसूल होंगे; एक के दस, सीधा हिसाब है।"

"जी हाँ हिसाब तो सीधा है" उस वृद्ध ने स्वीकृति दी। आगन्तुक मन ही मन बड़बड़ाया—

"हाँ हिसाब सीधा है किन्तु हिसाब सीधा होने से ही सौदा सस्ता नहीं पड़ता।"

अफसर की बातें उसे सहन नहीं हो रही थीं, और उसे भी असह्य

थी स्वयं उसकी अपनी विवशता। वह अपना ध्यान दूसरी तरफ लगाने के लिए एक बार उठा—दरवाज़े की खिड़की से बाहर नज़र डाली। छोटे बड़े वृक्ष सरपट दौड़ रहे थे। आँखें किसी पर टिक नहीं रही थीं। और मस्तिष्क में एक के बाद एक दृश्य घूमने लगा। अमावस्या की रात घन-घोर अंधेरा, घटा-टोप बादल और इस सन्नाटे में धू धू करता हुआ जलनेवाला स्टेशन, रह रह कर लोहे का चटकना। लपलपाती हुई लपटें, किन्तु फिर भी उस सन्नाटे में, निस्तब्धता में आग इतनी सरलता से लगातार जल रही थी, जैसे बर्फ की बड़ी चट्टान अपने आप पिघल कर चुपचाप छोटी होती जा रही हो। कुछ दूर उस प्रकाश से आलोकित सिपाहियों की खून से लथपथ लाशें, एक लाश की अधखुली आँखें और फटा हुआ मुँह···और उस दृश्य से ग्रामीण का मस्तिष्क विषाद से भर गया। उसने अपनी नज़र फेर ली। देखा पुलिस आफिसर उतरने की तैयारी कर रहा है। सामान एक जगह रख कर उसने अपनी पिस्तोल हाथ में ली! खोल कर देखा नौ कारतूस भरे थे। एक बार पिस्तोल को हाथ से खोल कर वह तन कर खड़ा हो गया। जैसे उसे अब किसी का डर नहीं।

स्टेशन आया। जल कर खाक हो चुका था। यात्री स्टेशन को देखने के लिए उतर पड़े किन्तु पुलिस ने प्लेटफार्म घेर रखा था। यात्री या नागरिक नाम को नहीं थे। पचासों पुलिस के सिपाही कन्धों पर संगीन जड़ी बन्दूकों को रखे, दाँये से बाँये चक्कर लगा रहे थे। पुलिस अफसर उतरा तो सबने तन कर सलामी दी। वातावरण में गजब का आतंक छाया हुआ था, यदि पत्ता भी खड़-खड़ाता तो उसकी ध्वनि कान में आ जाती थी।

नवागन्तुक ग्रामीण ने लेट कर फिर से चादर लपेट ली। वह सोचने

लगा—यही तुम्हारी सरकार है। मुश्किल से दस आदमियों ने यह सारा कांड किया और अब तुम अपने सैकड़ों सिपाही भेज कर जनता को बताना चाहते हो अपनी ताकत ! बेचारी जनता तुम्हारी ताक़त से कब इन्कार करती थी। फिर यह सब क्यों ? वह गाड़ी के फर्श पर लेटा हुआ, आंखें बन्द कर सोने का प्रयत्न करने लगा।

उसकी चेतना में आ खड़ा हुआ एक सात–आठ साल का लड़का। लड़के के आगे थी एक चार–पांच वर्ष की लड़की। एक बड़ा बँगला, बँगले का लम्बा चौड़ा आंगन और सामने फैला हुआ हरा भरा बगीचा। लड़की आगे आगे एक खास घेरे में घूम रही थी "छूओ जी, छूओ जी !" लड़का उसके पीछे पीछे चल कर उसी के पीछे चक्कर लगा रहा है। दोनों में से कोई किसी को छूता नहीं। किन्तु छूने के लिए आवाहन दोनों कर रहे हैं। दोनों का अन्तर मिटता नहीं था, उसी फासले से लगभग आधा घण्टा तक दोनों चक्कर काटते रहे। अन्त में लड़का आगे बढ़ा किन्तु लड़की कतरा कर पीछे मुड़ी और फिर आगे बढ़ गई। लड़का झुँझला कर चल दिया। लड़की ने कहा—"अजी कहाँ जा रहे हो ! बस थक गये। जरा छू कर दिखाओ न !"

"हम नहीं छूएँगे। तुम धोखा देती हो, धोखेबाज़ से कौन खेले ?"

"पकड़ न सके तो गाली देने लगे। धोखेबाज़ किसे कहते हैं जी ? फिर कभी न कहना। हिम्मत हो तो आओ।"—

× × × ×

"तुम इतनी गर्वीली क्यों हो गई हो ? कल तक मेरे साथ खेलती थी, आज मुझ से इतनी शर्म करने लगीं ? कितनी बदल गई हो तुम ! कितनी

बड़ी हो गई हो !"

वह नन्हा बच्चा अब कालेज का ग्रेजुएट हो कर घर लौटा है। दो तीन वर्ष बाद घर लौट कर उसने देखा उसके साथ बचपन में खेलनेवाली लड़की का रूप ही बदल गया है। दो वर्ष में इतना परिवर्तन ! लड़की न केवल शरीर से बदल चुकी थी, बल्कि उसका मन भी पूरी तरह बदल चुका था ! उसकी शरारती चँचल आँखों की पुतलियाँ जैसे किसी ने स्थिर कर दी थीं और उसकी वह कूद—हिरन की तरह चौकड़ियाँ भरना ! अपनी किलकारी से घर भरको गुँजानेवाली वह लड़की अब कहाँ चली गई ! और समय भी कितना जादूगर है, उसने अपने स्पर्श से, अपना जादू का हाथ लगा कर लड़की में कितना परिवर्तन कर दिया है।

"मैं बड़ी हो गई और आप जैसे उतने ही हैं। स्वयं अपना मुँह देखिये। मैं इतनी तो नहीं बदली हूँ कि आपको आश्चर्य करना पड़े।"

"मैं यदि आश्चर्य न करूँ तो क्या तुम पहलेवाली बन जाओगी ? पहिले मेरे आने पर तुम इस तरह धीरे धीरे कदम रख कर नीची गर्दन किये आती थी ? आज मालूम होता है तुम्हारे पांव पृथ्वी से चिपके जाते हैं और गर्दन उठाये नहीं उठती ! और तुम्हारा रूप ? मैं छोड़ कर गया था एक अबोध बालिका और इस समय मेरे सामने खड़ी है अप्सरा ! यह रम्भा है या उर्वशी।"

"देखिये यदि ऐसी बातें करेंगे तो मैं चली जाऊँगी और कभी नहीं आऊँगी। बुलाओगे तब भी नहीं। कालेज में क्या यही पढ़ा है ? उर्वशी और रम्भा की कहानियाँ ? मैं न रम्भा हूँ, न उर्वशी ! श्रीमान्‌जी शायद जागते हुए भी स्वप्न देख रहे हैं—ज़रा आँखें धो-कर आइये !"

"नहीं आँखें धोने की ज़रूरत नहीं है। मैं इस स्वप्न को देखता ही रहना चहता हूँ। जगने पर क्या मिलेगा? क्या जगरण इस स्वप्न से अधिक सुन्दर हो सकता है? यदि वश चले, मैं भगवान् से कोई वर माँग सकूँ तो यह वर माँगूगा कि हे भगवान्, मेरे इस स्वप्न को शाश्वत बना दे। आँख खुलने पर कभी यह स्वप्न ओझल न हो जाये!"

"भगवान् तक जाने की क्या ज़रूरत है, यह वरदान तो आपको किसी दूसरे से भी मिल जायगा। इसके लिए आपको किसी मन्दिर में दीपक नहीं जोड़ना पड़ेगा और न एकादशी का व्रत कर के अपने शरीर को सुखाना होगा! लेकिन एक बात ध्यान में रखिये, स्वप्न स्वप्न ही होता है और जागरण जागरण ही! जागरण स्थायी है और स्वप्न अस्थायी! स्वप्न अनेक आयेंगे और आपको लुभायेंगें भी! एक ही स्वप्न देखते देखते जब आप उकता जायँगे उस समय आप उस भगवान् से ही कहेंगे—"हे भगवान्, तुमने यह कैसा वर दिया! इस स्वप्न से तंग आ गया हूँ। उस समय ईश्वर आपकी प्रार्थना स्वीकार किये बिना अपने वरदान की लाज बचाने की चेष्टा करें तो श्रीमान् को उन्हें दोष देने का कारण न मिलेगा।"

"न मिले! यदि इस पृथ्वीतल पर ही कोई इस वरदान के देने की सामर्थ्य रखता है तो मुझे भगवान् तक जाने की आवश्यकता ही क्यों पड़ेगी? यदि तुम जानती हो तो उस देवता का नाम बताने की कृपा करो और उस की पूजा और प्रसाद के लिए क्या क्या करना पड़ेगा इसकी शास्त्रीय विधि भी बता दो!"

"समय आने पर सारी विधि बता दी जायगी। लेकिन एक बात कहे देती हूँ, जिसने आपको पास किया है, उसमें कुछ ज्यादा बुद्धि नहीं थी।

लो मैं चली !"

× × × ×

गाड़ी अपनी तेज़ चाल से मंजिल तय कर रही थी। पहिये अपने निश्चित ताल स्वर में थिरक रहे थे। वायु के झोंके आ रहे थे। ग्रामीण ने बाहर दृष्टि डाली। सपाट मैदान था, ज्वार, बाजरे की फसल कट चुकी थी, खेतों में छोटे छोटे डंठल खड़े थे। दूर दूर तक जाकर भी दृष्टि को कुछ मिलता नहीं था, इस लिए लौट आती थी। एक एक कर के खम्भे भागे जा रहे थे, खम्भे के तार कभी फैलते दिखाई देते और कभी सिकुड़ते।

एक के बाद दूसरी, अतीत की घटना मानस-पट पर आ रही थी—

लड़की की आँखों के आँसू सूख चुके थे, किन्तु अभी वह रह रह कर सिसकियाँ भर रही थी। बोलने का प्रयत्न करती थी किन्तु हृदय में शोक का वेग इतनी ज़ोर से उठता था कि मुँह से एक शब्द भी नहीं निकलता था। आधा घण्टा तक चुप रहने के बाद लड़की ने सिर ऊपर उठाया और उस युवक का हाथ पकड़ कर उसने कहा—"नहीं, आज नहीं जा सकेंगे। अपने जीवित रहते मैं आपको जाने न दूँगी। यदि मैं संसार में न रहूँ तो फिर आप अपनी इच्छा से कार्य करने में स्वतन्त्र रहेंगे। मेरी प्रार्थना, प्रार्थना नहीं आज्ञा आपको स्वीकार करनी ही होगी। आप इस तरह अपना बलिदान नहीं कर सकते। जो कुछ बलिदान करना पड़ेगा मैं करूँगी। यदि मैं न रहूँ तो संसार का क्या बिगड़ जायगा। आप जीवित रहेंगे तो बहुत कुछ कार्य कर सकेंगे। यदि मैं न रहूँगी तो कोई न कोई नारी मेरे रिक्त स्थान को पूरा कर लेगी, किन्तु आपका अभाव क्या किसी से पूरा किया जा सकेगा !"

नहीं, अब मेरा जीवन निरर्थक हो चुका है। इसकी सार्थकता इसीमें है कि किसी पुण्य-कार्य में, देश के कार्य में इस का विनियोग कर दूँ। तुम्हारी शक्ति पर मुझे विश्वास है, इसलिए मैं निश्चिन्तता से अपना उद्देश्य पूरा कर सकूँगा।"

"आप फिर देश के लिए बलिदान की बात करने लगे! यदि आप सच्ची और वास्तविक उत्सर्ग की भावना से बलि पथ पर जाते तो आपके उस कार्य से मुझे जितना हर्ष होता उतना किसी दूसरे को नहीं, किन्तु यह गौरव मेरे भाग्य में नहीं है। उस समय मैं स्वयं आपको बिदा करती। पर बात ऐसी नहीं है, इस समय आपका भविष्य पर से विश्वास उठ गया है। भविष्य में कोई अवलम्ब न देख कर आप अपनी निरर्थकता अनुभव कर रहे हैं। यदि जीवित रहेंगे तो मैं समझती हूँ आपको भूतकाल की स्मृतियाँ आश्रय देंगी और उनके सहारे आप भविष्य का निर्माण कर सकेंगे। लेकिन इस तरह भविष्य से निराश हो कर अपने आप को समाप्त करने की भावना में ही बुद्धिहीनता और कायरता है। आपकी इस दुर्बलता से मुझे मर्मान्तक वेदना होती है। आप इसे देश-सेवा का नाम दें या बलिदान का। मैं इसे आत्म-हत्या के अतिरिक्त कोई दूसरा नाम न दे सकूँगी। आत्म-हत्या के साथ साथ इसमें महान् स्वार्थ निहित है। केवल अपनी शान्ति और अपने दुःख से छुटकारे की उत्कट इच्छा ही आपको अग्रसर कर रही है। ऐसे बलिदानों से कभी किसी देश का भला नहीं हुआ और साथ ही जब भ्रम का परदा दूर होगा उस समय आप स्वयं अपने कार्य पर पश्चात्ताप करेंगे। उस पश्चात्ताप में मेरा अंश कितना रहेगा मैं जानती हूँ। तब क्या आपकी इच्छा है मैं दूसरे लोक में जाकर भी, यदि वह लोक वास्तव में है—पश्चात्ताप और वेदना के

बोझ से दबी रहूँ ? मेरे लिए मेरी प्रसन्नता के लिए आपको प्रतिज्ञा करनी होगी, आपको जीवित रहना है और जीवन प्राप्ति के लिए शक्तिभर प्रयत्न करना है ! पलायनवाद की यह भावना मन से निकालिये और जो कुछ होता है, आता है, उसका सामना करने के लिए अपने मन में सामर्थ्य एकत्रित कीजिये !"

"मैं इस पर विचार कर के कल उत्तर दूँगा।"

× × × ×

दूसरे दिन युवक जब उस लड़की के घर गया, तब तक सन्ध्या हो गई थी और अँधेरा गहरा हो चुका था। चिड़ियों की चौं चौं बन्द हो गई थी। युवक ने उदासी और विषाद के साथ धड़कते हृदय से बँगले के बाग़ में प्रवेश किया। वृक्षों के झुरमुट से उसे धीमे स्वर में फुस फुस सुनाई दिया, किन्तु वह कुछ सुन न सका।

युवक ठहर न सका आगे की बात सुनने के लिए वह वहाँ रुक न सका।

गाड़ी कुछ धीमी हो गई थी। ग्रामीण का हृदय धड़क रहा था। वह पसीने से तर हो गया था। गाड़ी ठहर रही थी। ग्रामीण ने अपनी लाठी उठाई और दरवाजा खोला। दूसरे यात्री ने पूछा—"क्या यहीं उतरना है ?"

"हाँ, मेरी यात्रा यहीं समाप्त हो गई।"

और वह नीचे उतर गया।

—श्रीराम शर्मा

कहानी लेखक

जयशंकर 'प्रसाद'

जन्म माघ शुक्ल १०, सं. १९४६ वि.। जन्मस्थान काशी। संवत १९९४ वि. में देहान्त। परिवार सम्पन्न, पिता के स्वर्गवास के कारण विद्यालय में अधिक नहीं पढ़ सके, विद्यालय छोड़ना पड़ा। बचपन में ही घर का बोझ उठाना पड़ा। घर का पूरा काम काज देखते और अध्ययन भी करते। संस्कृत, अंग्रेजी और उर्दू तथा फारसी भाषा का अच्छा परिचय प्राप्त किया।

वैदिक साहित्य, पौराणिक गाथाओं और भारतीय दर्शन में विशेष रुचि। इन विषयों का गंभीर अध्ययन, भारतीय इतिहास के पण्डित।

बचपन से ही कविता लिखने के अभ्यस्त, कवि, कहानीकार, निबन्ध—लेखक, नाटककार के रूप में शीघ्र ही प्रसिद्ध हुए। सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। हिन्दी साहित्य आपकी रचनाओं से गौरवान्वित हुआ।

साहित्य में भारत के प्राचीन इतिहास तथा दर्शन के प्रति आकर्षण। भाषा मँजी हुई, भाव ऊँचे।

काव्य—लहर, आँसू, कामायनी।

कहानीसंग्रह—छाया, प्रतिध्वनि, आँधी, इन्द्रजाल, आकाशदीप।

नाटक—विशाख, अजातशत्रु, कामना, नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त।

उपन्यास—कंकाल, तितली।

प्रेमचन्द

वास्तविक नाम धनपतराय। प्रेमचन्द के नाम से लिखने लगे और

इसी नाम से प्रसिद्ध हुए। बनारस के निकट एक छोटे गांव में १८८० ईस्वी में जन्म। सन् १९२० में गांधीजी का प्रभाव पड़ा और असहयोग आन्दोलन में सरकारी नौकरी छोड़ दी।

उपन्यास, कहानी, नाटक और साहित्यिक निबन्ध लिखे हैं। नाटक लिखने में सफलता नहीं मिली। कहानी और उपन्यास लिखने में सफल। हिन्दी में कहानी तथा उपन्यास कला के उत्कर्ष में आपका बहुत बड़ा योग है। भारत की मूक जनता के चित्रों को सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया है आपने अपनी रचनाओं में। आपने पीड़ित किसान को सर्वांग रूप में साहित्य का विषय बनाया। सदैव जनता का साथ देते रहे। आपका साहित्य जनता का साहित्य है। राष्ट्रीय भावनाएँ आपके साहित्य में व्यक्त हुई हैं।

८ अक्तूबर १९३६ ई. में निधन हुआ।

उपन्यास—कर्मभूमि, रंगभूमि, प्रेमाश्रम, कायाकल्प, ग़बन, गोदान, मंगलसूत्र।

कहानी-संग्रह—मानसरोवर पाँच भाग आदि।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

अम्बाला छावनी में एक साधारण परिवार में जन्म। फारसी, उर्दू, हिन्दी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान। कानपुर में बस गये। महावीरप्रसादजी द्विवेदी की प्रेरणा पर हिन्दी में लिखने लगे।

कहानियों में आदर्शवाद का पालन। प्रत्येक कहानी में आप पाठक को कोई न कोई सीख देना चाहते हैं। उपदेश रहते हुए भी कहानी में कहीं शिथिलता नहीं आती।

दुबेजी की चिट्ठी के रूप में आपने 'चाँद' में महीनों लिखा

जो हिन्दी में मनोरञ्जन की दृष्टि से बेजोड़ है।

उपन्यास—भिखारिणी, माँ;

चार क़हानी संग्रह जिन में चित्रशाला और पेरिस की नर्त्तकी उल्लेखनीय हैं।

चतुरसेन शास्त्री

निवास स्थान दिल्ली। सफल कहानी लेखक तथा उपन्यासकार, गद्य लिखने की अपनी स्वतन्त्र शैली, भाषा ओजस्वी और प्रवाहपूर्ण, आपकी कहानियों और उपन्यासों में मन के द्वन्द्व का अच्छा चित्रण रहता है, प्राचीन इतिहास की अनेक घटनाओं को आपने कहानी का रूप दिया है। आप अच्छे निबन्ध लेखक और आलोचक भी हैं। बालोपयोगी साहित्य का सृजन भी किया है। आपकी प्रमुख रचनाएँ निम्न प्रकार हैं।

उपन्यास—हृदय की परख, अन्तस्तल, हृदय की प्यास, वैशाली की ग्रामवधू।

कहानी संग्रह—रजकण आदि।

फुटकर—हिन्दी साहित्य का इतिहास, इस्लाम का विष वृक्ष, राजपूत बच्चे, मुगल बादशाहों की अनोखी बातें, सिंहगढ़ विजय आदि।

जैनेन्द्रकुमार

जन्म स्थान कौडियागंज, अलीगढ़; सन् १९०५ में जन्म। घर पर ही अध्ययन। कहानी लेखक, उपन्यासकार, निबन्ध लेखक और विचारक। आज कल दिल्ली में रहते हैं। अपनी कृतियों में आप किसी गुत्थी या समस्या को सुलझाने की चेष्टा करते हैं। प्रश्न की गहराई तक पहुँचने की पैनी दृष्टि। दार्शनिक दृष्टिकोण से देखने की चेष्टा करते हैं। अपनी स्वतन्त्र शैली। हिन्दी के

कथा-साहित्य को विकसित करने में विशेष योग। अब तक पाँच उपन्यास, आठ कहानी संग्रह और अनेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रमुख उपन्यास–परख, सुनीता, त्याग-पत्र।

कहानी संग्रह—नीलम देश की राजकन्या, नई कहानियाँ आदि।

शिवपूजन सहाय

जन्म सन् १८९३, जन्म स्थान उनवासगाँव, शाहाबाद; आजकल बिहार सरकार द्वारा सञ्चालित 'राष्ट्र भाषा समिति' के सभापति और पटना में रहते हैं। हिन्दी गद्य में एक नई शैली के जन्मदाता, भाषा में प्रवाह और मुहावरों का समुचित प्रयोग, अनुप्रासों का प्रयोग किन्तु इस प्रयोग से आपकी भाषा में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आती, कहीं कहीं कविता का आनन्द मिलता है। माधुरी, गंगा, जागरण, बालक, हिमालय आदि पत्रों के सम्पादक।

प्रकाशित पुस्तकें—देहाती दुनियाँ, विभूति (कहानी संग्रह), संसार के पहलवान, विहार का विहार, दो घड़ी आदि।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

इस समय भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'विश्वदर्शन' मासिक के सम्पादक और दिल्ली में रहते हैं। कहानी लेखक और निबन्ध लेखक। विश्व साहित्य ग्रन्थमाला के सम्पादक हैं।

कहानी में आप भारतीय जीवन के दुःख सुख को सफलतापूर्वक चित्रित करते हैं। संख्या में कम होते हुए भी आपकी कहानियों का हिन्दी के कथा-साहित्य में विशेष स्थान है।

बेचन शर्मा 'उग्र'

लिखने की विशेष और मौलिक शैली, गद्य में प्रवाह तथा ओज का

मिश्रण, भावों के व्यक्त करने का अपना विशेष ढंग; विक्रम, तथा संग्राम का सम्पादन किया है। अनेक कहानी संग्रह और उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं—

चाकलेट, शराबी, घण्टा, चिनगारियाँ, बुधुआ की बेटी, दिल्ली का दलाल चन्द हसीनों के ख़तूत, चार बेचारे, जीजाजी, रेशमी।

नाटक—महात्मा ईसा।

विनायकराव विद्यालङ्कार

निवासस्थान हैदराबाद, शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई, विलायत से बैरिस्टरी पास की, अपना जीवन जनता जनार्दन की सेवा में समर्पित कर चुके हैं, हैदराबाद की सामान्य जनता के उत्थान में आपने विशेष योग दिया है।

अपने महत्वपूर्ण पद तथा राजनीतिक कामों में व्यस्त रहते हुए भी हिन्दी की सेवा के लिए समय निकाल लेते हैं, हिन्दी साप्ताहिक 'आर्यभानु' के वर्षों सम्पादक रहे।

आप कहानी लिखते हैं। कहानी एक प्रकार से संस्मरणात्मक होती है। सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति असन्तोष। वर्त्तमान अवस्था पर अच्छा व्यंग करते हैं। भाषा पर हैदराबाद का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

मोहनलाल महतो 'वियोगी'

आपका जन्म सं० १९५१ विक्रमी में हुआ, जन्मस्थान रूपरडीह गया; 'वियोगी' उपनाम। शिक्षा घर पर हुई। कविता भी लिखते हैं।

कहानियों में करुणा तथा दैन्य का चित्रण इतनी कुशलता के साथ करते हैं कि पाठक के मस्तिष्क में वह कहानी सदा के लिए अंकित हो जाती है।

गद्य लिखने की विशेष शैली।

कविता संग्रह—निर्माल्य, एकतारा, कल्पना।

काव्य—आर्यावर्त्त।

उपन्यास—शेषदान, आदमखोर।

कहानी संग्रह—रजकण।

नाटक—धोखा, तथास्तु, आत्मकथा, उस पार।

सुभद्राकुमारी चौहान

जन्म श्रावण शुक्ल ५, सं. १९६१ विक्रम तथा निधन माघ शुक्ल ५, सं० २००४ विक्रम में। असहयोग आन्दोलन में पाठशाला छोड़ी।

राष्ट्रीय चेतना को आपने अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। आपकी "झाँसीवाली रानी" तथा "जलियाँवाला बाग" की कविताओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन को अग्रसर किया। भाषा बहुत सरल। वात्सल्य रस को लेकर भी आपने अनेक कविताएँ लिखी हैं।

कविता के अतिरिक्त आपने कहानियाँ लिखी हैं। घरेलू समस्याओं को लेकर ही आपकी अधिकांश कहानेयाँ लिखी गई हैं। वर्णन करने की सादगी हृदय पर सीधा प्रभाव डालती है।

कविता संग्रह—मुकुल, त्रिधारा।

कहानी संग्रह—बिखरे मोती, उन्मादिनी।

श्रीराम शर्मा

निवासस्थान हैदराबाद। हिन्दी के पत्रकार और कहानी लेखक, अब तक हिन्दी के पत्रों में अनेक कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। सामयिक घटनाओं को लेकर ही अधिकांश कहानियाँ लिखी गई हैं। वर्त्तमान युग को व्यक्त करने का प्रयत्न दिखाई देता है आपकी कहानियों में।


8.3,63 I
37184



